अप्रैल, 2019
I.S.S.N. : 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Cover II

प्रस्तावित संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक : श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

परामर्शदाता : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महमूद अली खां और विनोद कुमार आर्य

ISSN- 2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

© 2019 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

पी एल डी (सी. डी)-4-2019 आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अप्रैल, 2019 अंक - 4

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय
संपादक
अविनाश शुक्ला

विधि साहित्य
प्रकाशन

(2019) 1 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on
Website ➡ https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्च न्यायालयों द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो अधिवक्ताओं, विधि छात्रों, न्यायाधीशों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

मैं इस संपादकीय के माध्यम से आपका ध्यान संविधान द्वारा हर किसी को समानता का दर्जा प्रदान किए जाने और दूसरी ओर समाज द्वारा असमानता का दर्जा प्रदान किए जाने की समस्या की ओर दिलाना चाहता हूं । संविधान हर किसी को कानून की दृष्टि में बराबर मानता है जबकि समाज में अनेक ऐसी कुरीतियां व्याप्त हैं जो लिंग के आधार पर महिलाओं को गैर बराबरी का दर्जा प्रदान करती हैं । देश की अधिकांश महिलाएं आज भी उतनी सशक्त नहीं हैं जितना उनको स्वाधीनता के पश्चात् होना चाहिए था । शहर हो या गांव, महिलाओं की समस्याएं ज्यों की त्यों हैं । आज भी महिलाएं अशिक्षा और गरीबी की शिकार हैं । अक्सर उनकी अशिक्षा और गरीबी का लाभ उठाकर पुरुष विवाह का भरोसा देकर उनके साथ शारीरिक संबंध स्थापित कर लेते हैं । अभी हाल में उच्चतम न्यायालय में **प्रमोद सूर्यभान पवार** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** वाला ऐसा ही मामला प्रस्तुत हुआ । इस मामले में एक महिला ने केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल के एक अधिकारी पर आरोप लगाया कि उसने विवाह का वचन करके उसके साथ शारीरिक संबंध स्थापित किए और बाद में विवाह से मुकर गया । दोनों की जातियां भी अलग थीं । 2008 से 2015 के मध्य दोनों के बीच शारीरिक संबंध बने रहे । मई 2016 में महिला को पता चला कि पुरुष ने किसी अन्य स्त्री के साथ विवाह रचा लिया है । तत्पश्चात् महिला ने पुरुष के विरुद्ध बलात्कार की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई और साथ ही अनुसूचित जाति और अनुसूचित

जनजाति (अत्याचार निवारण) कानून के अंतर्गत भी प्राथमिकी दर्ज कराई । अभियुक्त पुरुष ने प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रद्द किए जाने के लिए बम्बई उच्च न्यायालय में याचिका प्रस्तुत की जिसे खारिज कर दिया गया । उक्त खारिज आदेश से व्यथित होकर अभियुक्त पुरुष ने उच्चतम न्यायालय की शरण ली । उच्चतम न्यायालय में न्यायमूर्ति डी. वाई. चंद्रचूड़ और न्यायमूर्ति इंदिरा बनर्जी की खंड न्यायपीठ ने मामले की सुनवाई की और अभिनिर्धारित किया कि झूठा वचन एक प्रपंच होता है जो केवल शारीरिक संबंध बनाने के प्रयोजनार्थ किया जाता है । इसके विपरीत सच्चा वचन वह होता है जिसे पूरा किए जाने की मंशा दिखाई देती है, भले ही बाद में किसी कारणवश वह वचन पूरा न किया जा सके । पहली स्थिति में महिला की सहमति भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के अधीन सहमति नहीं मानी जा सकती जबकि दूसरी स्थिति में महिला की सहमति को सहमति माना जा सकता है । पहली स्थिति में विवाह का झांसा देकर शारीरिक संबंध स्थापित करना बलात्संग की श्रेणी में आएगा । अत: उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि अभियुक्त पुरुष द्वारा किया गया वचन झूठा था । साथ ही शिकायतकर्ता महिला ने संबंध बनाने की सहमति प्रदान की थी जबकि उसे पता था कि विवाह में अवरोध हैं । इतना ही नहीं, वह अभियुक्त पुरुष को अपने निवास पर ठहराती थी और स्वयं उसके घर जाकर ठहरती थी, जहां वह तैनात होता था । उच्चतम न्यायालय ने महिला द्वारा अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) कानून के अंतर्गत दायर की गई प्राथमिकी को भी खारिज कर दिया।

यहां पर यह प्रश्न उद्भूत होता है कि यदि विवाह का झांसा दिया गया और शुरू से ही मंशा विवाह करने की नहीं थी बल्कि शारीरिक संबंध स्थापित करने की थी, तो यह बलात्संग माना जाएगा या धोखाधड़ी, जिसके लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अधीन दंड का प्रावधान है । न्यायालय ने निर्णय दिया कि वचन जो भी किया गया हो, विवाह का या किसी अन्य प्रकार के लाभ पहुंचाने का, इसमें महिला की सहमति सम्मिलित थी और अभियुक्त पुरुष द्वारा सहमति प्राप्त किए

जाने के प्रयोजनार्थ बल प्रयोग नहीं किया गया । माननीय उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट कर दिया कि यदि शुरू से ही मंशा धोखा देने की थी तो यह बलात्संग का मामला माना जाएगा लेकिन यदि धोखा है तो सजा धोखे के लिए मिलनी चाहिए न कि बलात्संग के लिए ।

यहां पर एक अन्य समस्या उद्भूत होती है, जो यह है कि मंशा को प्रमाणित करना अत्यधिक कठिन कार्य है । **यडेला श्रीनिवास राव** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभियुक्त को बलात्संग का दोषी माना क्योंकि अभियुक्त ने लगातार असत्य वचन किया और संबंध बनाए जिसके परिणामस्वरूप महिला गर्भवती हो गई । इसी प्रकार से **दीपक गुलाटी** बनाम **हरियाणा राज्य** वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि इस बात के समुचित प्रमाण अभिलेख पर उपलब्ध होने चाहिए कि अभियुक्त की नीयत शुरू से ही गलत थी और चूंकि गलत नीयत के प्रमाण प्रस्तुत नहीं किए गए, अत: संदेह का लाभ अभियुक्त को दिया जाएगा ।

पत्रिका में समायोजित सामग्री और गुणवत्ता के संबंध में सभी पाठकों के विचार अपेक्षित हैं । अगली पत्रिका के संपादन के समय उनके विचारों पर ध्यान दिया जाएगा ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अप्रैल, 2019

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
किरन धवन **बनाम** विवेक मित्तल और एक अन्य	448
किराला वेंकटम्मा (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि **बनाम** के. मुनास्वामी और अन्य	425
गुरविन्दर सिंह चड्ढा **बनाम** छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य	469
जे. लिगोरिन **बनाम** गंगनाप्रागसी	536
पूजा सुमेर पुरोहित (श्रीमती) **बनाम** सुमेर मदन लाल पुरोहित	477
फ़ेकन बाई (श्रीमती) और अन्य **बनाम** सुखदेव ध्रुव और अन्य	503
बालक राम **उर्फ** काका राम **बनाम** करनैल सिंह और अन्य	516
मोहम्मद शफ़ी **बनाम** जसना और अन्य	461
मोहम्मद शफ़ीक **बनाम** भारत संघ और अन्य	511
राम तरी और अन्य **बनाम** रतन चन्द और अन्य	553
लाभ सिंह **बनाम** पाल सिंह और अन्य	523
लीला अग्रवाल (श्रीमती) **बनाम** श्रीमती सरकार और एक अन्य	485
सुनील जैन **बनाम** विशाल राम साहू	494

संसद् के अधिनियम

राजभाषा अधिनियम, 1963 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 20

पृष्ठ संख्या

कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66)

– धारा 7(1)(घ) [सपठित डी. एफ़ मुल्ला कृत मोहम्मडन ला की धारा 255] – मुस्लिम पति द्वारा अपनी पत्नी को तलाक़ – पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध विभिन्न दांडिक मामले संस्थित किया जाना – पत्नी द्वारा फाइल दांडिक मामलों के अंतिम निपटान तक पति के विरुद्ध उसे पुन: विवाह करने से रोकने के लिए आवेदन – मंजूरी – विधिमान्यता – चूंकि मुस्लिम स्वीय विधि किसी मुस्लिम को एक से अधिक पत्नियों से विवाह करने के लिए अनुज्ञात करती है – अत: कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 7(1)(घ) के अधीन प्रदत्त शक्ति का किसी मुस्लिम पति को पुन: विवाह करने से रोकने के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता ।

मोहम्मद शफ़ी बनाम **जसना और अन्य** 461

छत्तीसगढ़ भू-राजस्व संहिता, 1959 (1959 का 20)

– धारा 165(1) – भू-स्वामी द्वारा भूमि का बंधक – अंतरण का अधिकार – बंधक कर्ता के पास 10 एकड़ से कम असिंचित भूमि होना – ऐसा बंधक संहिता की धारा 165(1) के अतिक्रमण में होने के कारण विधिमान्य नहीं है ।

लीला अग्रवाल (श्रीमती) बनाम **श्रीमती सरकार और एक अन्य** 485

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39)

– धारा 63(ग) – व्यादेश के लिए वाद – विल के

पृष्ठ संख्या

आधार पर मालिकाना हक़ का दावा – विल के निष्पादन की शर्तें पूरी न होना – कानूनी उपबंधों का अननुपालन – ऐसी त्रुटिपूर्ण विल के आधार पर वाद डिक्री नहीं किया जा सकता – परिणामत: संपत्ति वसीयतकर्ता के नैसर्गिक वारिसों को न्यागत होगी ।

बालक राम उर्फ **काका राम** बनाम **करनैल सिंह और अन्य** 516

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4)

– धारा 5 और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39) – धारा 63 – विल अथवा व्यवस्थापन विलेख – अवधारण – विलेख में यह उल्लेख होना कि विलेख के निष्पादन कर्ता की मृत्यु के पश्चात् संपत्ति का कब्जा हिताधिकारी को दिया जाएगा – विलेख में यह भी उल्लेख होना कि निष्पादन कर्ता की मृत्यु के पश्चात् ही व्यवस्थापी में आत्यंतिक अधिकार निहित होगा – व्यवस्थापक को अंतरण के अधिकार का उल्लेख न होना – ऐसा दस्तावेज व्यवस्थापन न होकर विल माना जाएगा – विलेख को व्यवस्थापन का नाम देने से कोई अंतर नहीं पड़ता, जहां अभिलेख में मृत्यु के बाद अधिकार दिए हों ।

किराला वेंकटम्मा (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि बनाम **के. मुनास्वामी और अन्य** 425

– धारा 54, 58 और 60 – कृषि भूमि का बंधक – मोचन – प्रतिवादी द्वारा यह अभिवाक् किया जाना कि बंधक सशर्त विक्रय होने के कारण धन का प्रतिदाय न करने के कारण विक्रय बन गया था – साक्ष्य से यह साबित होना कि बंधकदार को भूमि का क़ब्जा प्रदत्त नहीं

पृष्ठ संख्या

किया गया था – बंधक एक सादा बंधक होने के कारण वादी को बंधक के मोचन का अधिकार प्राप्त है तथापि, बंधकदार उचित ब्याज सहित बंधक की मूल धनराशि प्राप्त करने का हकदार है ।

लीला अग्रवाल (श्रीमती) बनाम **श्रीमती सरकार और एक अन्य** 485

– धारा 54, 58 और 60 – कृषि भूमि का बंधक – मोचन – प्रतिवादी द्वारा यह अभिवाक् किया जाना कि बंधक सशर्त विक्रय होने के कारण धन का प्रतिदाय न करने के कारण विक्रय बन गया था – साक्ष्य से यह साबित होना कि बंधकदार को भूमि का क़ब्जा प्रदत्त नहीं किया गया था – बंधक एक सादा बंधक होने के कारण वादी को बंधक के मोचन का अधिकार प्राप्त है तथापि, बंधकदार उचित ब्याज सहित बंधक की मूल धनराशि प्राप्त करने का हकदार है ।

लीला अग्रवाल (श्रीमती) बनाम **श्रीमती सरकार और एक अन्य** 485

– धारा 105 [संविधान, 1950 का अनुच्छेद 14 और 226] – पट्टे का रद्दकरण – टैंक के परिरक्षण और सड़क विस्तार के आधार पर पट्टे का समय-पूर्व रद्दकरण – कारण बताओ सूचना में पट्टा रद्दकरण के आधारों और कारणों का उल्लेख न होना – पट्टा रद्द करने से पूर्व पट्टाधारियों को सुनवाई का अवसर न दिया जाना – राज्य सरकार द्वारा पट्टे के रद्दकरण के लिए किसी सामग्री का प्रदाय न किया जाना – पट्टे का रद्दकरण नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के अतिक्रमण में माना जाएगा

पृष्ठ संख्या

– अत: ऐसा आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है – तथापि, सरकार नियमों के अनुसरण में कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र है ।

गुरविन्दर सिंह चड्ढा बनाम **छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य** 469

– धारा 106 और 107 – विनिर्माण प्रयोजन के लिए अरजिस्ट्रीकृत पट्टा – पट्टे के पर्यवसान के लिए 30 दिनों की सूचना – विधिमान्यता – पट्टा-विलेख में अधिकथित निबंधन और शर्तें धारा 107 को दृष्टिगत करते हुए पक्षकारों पर आबद्धकर न होना – पट्टे के बारे में यह नहीं समझा जा सकता कि पट्टा वर्ष-प्रतिवर्ष के लिए था – धारा 106 के अनुसार 6 मास की सूचना की आवश्यकता नहीं है – पट्टे के पर्यवसान के लिए 30 दिवसों की सूचना अविधिमान्य नहीं कही जा सकती ।

किरन धवन बनाम **विवेक मित्तल और एक अन्य** 448

संविदा अधिनियम, 1872 (1872 का 9)

– धारा 74 और संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) – धारा 55 – संपत्ति के विक्रय के लिए विक्रय करार – अधिदाय धन – क्रेता द्वारा संपत्ति के दोष के कारण क्रय करने से इनकार – विक्रेता द्वारा अधिदाय धन का समपहरण – क्रेता द्वारा करार के समय विक्रेता को अधिदाय धनराशि न कि अग्रिम धनराशि दी जानी – करार में अधिदाय धनराशि के समपहरण के संबंध में कोई उल्लेख न किया जाना – विक्रेता धनराशि को समपहृत करने का हक़दार नहीं है ।

सुनील जैन बनाम **विशाल राम साहू** 494

पृष्ठ संख्या

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 21 [सपठित पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 5(3)] – पासपोर्ट के लिए आवेदन – भाई के विरुद्ध प्रतिकूल पुलिस रिपोर्ट के आधार पर पासपोर्ट जारी करने से इनकार – मात्र किसी नातेदार के विरुद्ध प्रतिकूल रिपोर्ट या टिप्पण के आधार पर आवेदक को पासपोर्ट जारी करने से इनकार करना – संविधान के अनुच्छेद 21 का भंग होना – आवेदक से संबंधित रिपोर्ट के आधार पर पासपोर्ट जारी करने या न करने का निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए ।

मोहम्मद शफ़ीक बनाम **भारत संघ और अन्य** 511

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 22, नियम 4 और आदेश 1, नियम 10 – मूल विक्रेता की मृत्यु के पश्चात् विक्रय करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद – विधिक वारिसों को पक्षकार बनाया जाना – यदि संहिता के आदेश 22, नियम 4 के अधीन विधिक वारिसों को पक्षकार बनाया जाता है तो वे मूल विक्रेता द्वारा लिए गए आधार से बाहर नहीं जा सकते – तथापि, यदि उन्हें संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन पक्षकार बनाया जाता है तो वे अपनी वैयक्तिक क्षमता के आधार पर अपना स्वयं का आधार लेने के लिए हक़दार होंगे ।

लाभ सिंह बनाम **पाल सिंह और अन्य** 523

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (1956 का 30)

– धारा 5, 8 और 15 [सपठित मध्य प्रदेश भू-राजस्व

पृष्ठ संख्या

अधिनियम, 1959 की धारा 164] – कृषि भू-संपत्ति – पुत्री को उत्तराधिकार – समुदाय में प्रचलित रूढ़ि के अनुसार उत्तराधिकार का दावा – मूल उत्तराधिकारियों द्वारा निचले न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध प्रथम या द्वितीय अपील न की जानी – तीसरे पक्षकार द्वारा अपील फाइल करके उनकी ओर से दलील दी जानी – चूंकि मूल पक्षकार द्वारा प्रचलित रूढ़ि को साबित नहीं किया गया है – अत: तीसरे पक्षकार की ओर से अपील में दी गई दलील स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है – अपील खारिज होने योग्य है ।

फ़ेकन बाई (श्रीमती) और अन्य बनाम **सुखदेव ध्रुव और अन्य** 503

– धारा 22 – कृषि और आबादी भूमि – सह-अंशदार – सह-अंशदार द्वारा दूसरे सह-अंशदार से भिन्न व्यक्ति को भूमि का विक्रय – सह-अंशधारी द्वारा अग्र-क्रय के अधिकार का दावा – विधिमान्यता – चूंकि सह-अंशदार ने अपने सह-अंशदार और सह-खातेदार को भूमि विक्रीत करने का कोई प्रस्ताव नहीं किया अत: वादी-सह-अंशदार का व्यतिक्रम न होने और अधिमानी अधिकार होने के कारण वह वाद-भूमि के प्रतिफल का संदाय करके भूमि का कब्जा पाने का अधिकारी है ।

राम तरी और अन्य बनाम **रतन चन्द और अन्य** 553

– धारा 22 – कृषि और आबादी भूमि का विक्रय – सह-अंशदार द्वारा सह-अंशदार और सह-खातेदार से भिन्न व्यक्ति को विक्रय – वादी-सह-अंशदार द्वारा अग्र-क्रय का दावा – वादी द्वारा प्रतिवादी के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख की प्रति साक्ष्य में पेश न की

पृष्ठ संख्या

जानी – प्रभाव – चूंकि प्रतिवादी द्वारा अपने हक में विक्रय विलेख के निष्पादन को स्वीकार किया गया है – इसके अतिरिक्त वादी के काउंसेल का यह दायित्व था कि वह विक्रय विलेख की प्रति साक्ष्य में पेश करे – अत: काउंसेल के व्यतिक्रम के लिए वादी को अनुतोष देने से इनकार नहीं किया जा सकता ।

राम तरी और अन्य बनाम **रतन चन्द और अन्य** 553

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 13ख(2) – आपसी सम्मति द्वारा विवाह-विच्छेद – 6 मास की उपशमन अवधि की छूट के लिए संयुक्त आवेदन – निचले न्यायालय द्वारा खारिजी – पक्षकारों द्वारा विवाह के 2-3 दिन के पश्चात् से ही पृथक्-पृथक् रहना – पक्षकारों के बीच सुलह के समस्त प्रयास विफल होना – दोनों पक्षकारों द्वारा संयुक्त आवेदन में इस बात का उल्लेख किया जाना कि वे विवाह-विच्छेद के पश्चात् पुन: विवाह करने के इच्छुक हैं – जहां पक्षकारों के बीच सुलह के कोई आसार नजर नहीं आते हों और पक्षकारों की व्यथा बढ़ने की संभावना हो वहां उपशमन अवधि में छूट देकर विवाह विघटित किया जाना ही उचित है ।

पूजा सुमेर पुरोहित (श्रीमती) बनाम **सुमेर मदन लाल पुरोहित** 477

– धारा 13(1)(ik) – पति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी – पति द्वारा यह अभिकथन किया जाना कि पत्नी वेलिंगटन स्थित अपनी ससुराल में केवल 10 दिन रहकर पांडिचेरी चली गई और वहीं रहने लगी – पत्नी द्वारा वेलिंगटन में ठंड बर्दाश्त न करने के कारण स्वास्थ्य

पृष्ठ संख्या

कारणों से और अपनी नौकरी के कारण पांडिचेरी में रहने का कथन किया जाना – पति द्वारा परित्यजन और क्रूरता के आधार पर अर्जी – पति द्वारा 'क्रूरता' के संबंध में कोई विनिर्दिष्ट घटना, समय और स्थान का उल्लेख न किया जाना – पत्नी द्वारा दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए आवेदन – पति द्वारा क्रूरता को साबित करने के लिए सबूत पेश किया जाना चाहिए – मात्र प्रकथनों के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर नहीं की जा सकती ।

जे. लिगोरिन बनाम **गंगनाप्रागसी** 536

– धारा 13(1)(इख) – 29 वर्ष की लंबी अवधि तक पृथक् रहने के आधार पर विवाह के विघटन के लिए अर्जी – पत्नी द्वारा यह कथन किया जाना कि वह अपने पति के साथ आत्मीयता के साथ रहने के लिए तैयार है – पत्नी द्वारा दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए आवेदन फाइल किया जाना – विवाह-विच्छेद के लिए मात्र लम्बे समय से पृथक्-पृथक् रहना एक आधार नहीं हो सकता – पति या पत्नी द्वारा साथ रहने में जीवन को खतरा होने की आशंका को साबित किया जाना चाहिए ।

जे. लिगोरिन बनाम **गंगनाप्रागसी** 536

(2019) 1 सि. नि. प. 425 आंध्र प्रदेश

किराला वेंकटम्मा (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि

बनाम

के. मुनास्वामी और अन्य

तारीख 6 जून, 2018

न्यायमूर्ति ए. शंकर नारायण

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) – धारा 5 और भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39) – धारा 63 – विल अथवा व्यवस्थापन विलेख – अवधारण – विलेख में यह उल्लेख होना कि विलेख के निष्पादन कर्ता की मृत्यु के पश्चात् संपत्ति का कब्जा हिताधिकारी को दिया जाएगा – विलेख में यह भी उल्लेख होना कि निष्पादन कर्ता की मृत्यु के पश्चात् ही व्यवस्थापी में आत्यंतिक अधिकार निहित होगा – व्यवस्थापक को अंतरण के अधिकार का उल्लेख न होना – ऐसा दस्तावेज व्यवस्थापन न होकर विल माना जाएगा – विलेख को व्यवस्थापन का नाम देने से कोई अंतर नहीं पड़ता, जहां अभिलेख में मृत्यु के बाद अधिकार दिए हों ।

1984 का मूल वाद सं. 327 मृतक वादी-किराला वेंकटम्मा द्वारा उपर्युक्त अनुतोषों के लिए फाइल किया गया था । उसने यह पक्षकथन किया था कि प्रतिवादी सं. 2 उसका भाई है । प्रतिवादी सं. 1 और 3 उसके पुत्र हैं । प्रतिवादी सं. 4 और 5 क्रमश: प्रतिवादी सं. 1 और 3 की पत्नियां हैं और वे सभी साथ-साथ रह रहे हैं । वाद संपत्ति में मद सं. 1 और 2 सम्मिलित हैं । मद सं. 1 शुष्क भूमि है जिसका माप 0 एकड़ 49 सेन्ट है और जो 1 एकड़ 66 सेन्ट भूमि का भाग है और यह भूमि सर्वेक्षण सं. 173/1 में स्थित है जिसमें सर्वेक्षण सं. 176/6 में कुंए के अधिकार के साथ पम्प सेट लगा हुआ है और कुंए में 1/2 भाग के अधिकार का तथा उसमें लगे हुए उपकरणों और उसमें की नालियों, वृक्षों इत्यादि के संबंध में दावा किया गया है और मद सं. 2 एक मकान है

जिसका माप पूर्व-पश्चिम 25 गज और उत्तर-दक्षिण 20 गज है और जिसके संबंध में विनिर्दिष्ट सीमाएं दी गई हैं । वर्तमान द्वितीय अपील के लंबन के दौरान एकमात्र अपीलार्थी की मृत्यु हो गई और इसलिए उसके भाई की पुत्री को उसके विधिक प्रतिनिधि होने के नाते अपीलार्थी सं. 2 के रूप में अभिलेख पर पक्षकार बनाया गया है । प्रत्यर्थी सं. 2 की भी मृत्यु हो गई और उसके विधिक प्रतिनिधि अन्य प्रत्यर्थियों के रूप में पहले से ही अभिलेख पर मौजूद हैं । अपीलार्थी ने वाद-अनुसूची में दी गई संपत्ति में अपने अधिकार और हक की घोषणा के लिए और प्रतिवादी सं. 1 से 5 को अपने कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने तथा वाद-संपत्ति का उपभोग करने के लिए स्थायी व्यादेश हेतु वाद फाइल किया था । पुत्तूर के प्रधान जिला मुंसिफ की फाइल पर के मूल वाद सं. 327/1984 में वादी श्रीमती किराला वेंकटम्मा ने, जिसने पुत्तूर के अधीनस्थ न्यायाधीश की फाइल पर 1991 की अपील वाद सं. 14 फाइल की थी, असफल होकर सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन वर्तमान द्वितीय अपील फाइल की है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – निचले न्यायालयों ने प्रदर्श ए-5/बी-2 की परीक्षा की है और प्राथमिक न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि इसमें किसी विल की सभी विशेषताएं मौजूद हैं और उसका नामकरण मानदंड नहीं है और तद्द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि प्रदर्श-5/बी-2 विल है और इसका व्यवस्थापन-विलेख के रूप में निर्वचन नहीं किया जा सकता जैसाकि कहा गया है । विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित उक्त निष्कर्ष के प्रतिकूल विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने प्रदर्श ए-5/बी-2 में किए गए कतिपय उल्लेख का निर्देश करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि यह एक व्यवस्थापन-विलेख है जिसका विल के रूप में निर्वचन नहीं किया जा सकता । विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने ऐसा निष्कर्ष निकालने के लिए मुख्य रूप से प्रदर्श ए-5/बी-2 में उल्लिखित कतिपय पदों (अभिव्यक्तियों) को विचार में लिया है । विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा विचार में लिया प्रथम उल्लेख इस आशय का है कि अनुसूचित संपत्तियां मुफ्त में और प्रतिफल दिए बिना दी गई हैं और व्यवस्थापक केवल अनुसूचित संपत्तियों से प्राप्त आय का उपभोग कर सकती है और इस बात को भी विचार में लिया गया कि न तो

व्यवस्थापक ने और न ही उसके वारिसों ने अनुसूचित संपत्तियों में किसी अधिकार का दावा किया है और यह राय व्यक्त की कि इससे इस बात की पुष्टि होती है कि व्यवस्थापक ने संपत्ति में अपना हित प्रस्तुतकर्ता के हक में विन्यास कर दिया था और उसने जो कुछ आरक्षित रखा था वह केवल अनुसूचित संपत्तियों में आय का उपभोग है न कि इससे अधिक और तद्द्वारा प्रदर्श ए-5/बी-2 का व्यवस्थापन-विलेख के रूप में न कि एक विल के रूप में निर्वचन किया । निस्संदेह यह सही है कि प्रतिवादियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब ली गई नजीरें इस आशय की हैं कि जहां तक विलेख के रद्दकरण का संबंध है, व्यवस्थापी की ओर से व्यवस्थापक को बनाए रखने के लिए विफलता का आधार एक आधार नहीं है और इसलिए हिन्दू विधि द्वारा विनियमित किसी व्यक्ति द्वारा जंगम संपत्ति के दान में कब्जे का परिदान आवश्यक नहीं है । तथापि, वर्तमान मामले में ऐसा कुछ और भी है जिसकी परीक्षा किए जाने की आवश्यकता है । घोषित विधि से स्पष्ट है कि मुख्य परीक्षा जो लागू की जानी है, इस बारे में है कि क्या विन्यास विलेख के निष्पादन कर्ता के जीवनकाल के दौरान प्रभावी है अथवा क्या यह उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रभावी है और यह वस्तुत: पश्चात्वर्ती प्रकृति का है और निष्पादन कर्ता के जीवनकाल के दौरान परिवर्ती और खंडनीय बनाता है । अत: प्रदर्श ए-5/बी-2 में उल्लिखित खंड यह है कि इसके निष्पादन-कर्ता को इसे परिवर्तित करने का अधिकार नहीं है और इसलिए यह अभिनिर्धारित करने के लिए कोई आधार नहीं है कि यह व्यवस्थापन-विलेख से संबंधित विलेख है न कि विल से । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने 1970 के टी. सी. सं. 372 तारीख 13 जुलाई, 1976 को विनिश्चित (1977 टैक्स एल. आर. 1187) वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के विनिश्चय का भी इस आशय के लिए अवलंब लिया है कि दस्तावेज के निर्बंधनात्मक खंड किसी भी प्रकार से विन्यास को प्रभावी नहीं करते और इसलिए दस्तावेज एक विल है जहां निष्पादन कर्ता ने खंड के संबंध में अपने जीवनकाल के दौरान आय के उपभोग का उपबंध किया है और उपबंध इस आशय का है कि निष्पादन कर्ता अपने जीवनकाल के दौरान किसी भी प्रकार से उल्लिखित संपत्ति का अंतरण नहीं करेगी । यदि

प्रदर्श ए-5/बी-2 की परीक्षा की जाए तो मुख्य उल्लेख इस आशय का है कि कर्ता या निष्पादन कर्ता की मृत्यु के पश्चात् अनुसूची में उल्लिखित संपत्तियों पर हिताधिकारी अर्थात् इस मामले के प्रतिवादी सं. 1 द्वारा संपत्तियां कब्जे में ली जाएंगी और तत्पश्चात् वह अंतरण के अधिकार के साथ चाहे वह दान द्वारा हो या संपत्ति के विक्रय द्वारा, सभी आत्यंतिक अधिकारों सहित संपत्ति के अनन्य स्वामी के रूप में उपभोग करेगा । विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा इस विशिष्ट उल्लेख का पूर्ण रूप से गलत निर्वचन किया गया है । इसके प्रतिकूल विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने किसी भी प्रकार से इस सीमा तक संप्रेक्षण किया है कि निष्पादनकर्ता का अधिकार व्यवस्थापन द्वारा हिताधिकारी के हक में अंतरित हो गया था और यह निष्कर्ष पूर्णतया उस निष्कर्ष के विरुद्ध जाता है जिसका निष्पादन कर्ता द्वारा प्रदर्श ए-5/बी-2 में उल्लेख किया गया है । अत: यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि उपर्युक्त उल्लेख निष्पादन कर्ता की मृत्यु के पश्चात् ही व्यवस्थापी या हिताधिकारी के हक में आत्यंतिक अधिकार निहित करता है न कि प्रस्तुत कर्ता में आत्यंतिक अधिकारों के साथ । अत: संपत्तियों में अंतरण के अधिकार स्थगित रखे गए थे और यह शर्त रखी गई थी कि व्यवस्थापन निष्पादन कर्ता की मृत्यु के पश्चात् ही हिताधिकारी के हक में प्रभावी होगा न कि प्रस्तुत कर्ता के हित में और दूसरे अर्थों में उस तारीख को जब निष्पादन कर्ता ने प्रदर्श ए-5/बी-2 का निष्पादन किया । अत: किसी भी दृष्टिकोण से जांच करने पर मूल दस्तावेज प्रदर्श ए-5/बी-2 का केवल विल के रूप में निर्वचन किया जा सकता है न कि व्यवस्थापन-विलेख के रूप में, यदि मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा निर्दिष्ट किए गए उपर्युक्त विनिश्चयों में अधिकथित सिद्धांतों और सागरचंद्र मंडल वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों को दृष्टिगत करते हुए परीक्षा की जाए तो अन्य कोई मत संभव नहीं है । अत: मूल दस्तावेज प्रदर्श ए-5/बी-2 को एक व्यवस्थापन-विलेख का नाम देने से ही एक व्यवस्थापन दस्तावेज नहीं बन जाता तथापि, यह एक विल है जिसमें किसी विल की सभी विशेषताएं मौजूद हैं । अत: विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा प्रदर्श ए-5/बी-2 के संबंध में अभिलिखित निष्कर्ष विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों के प्रतिकूल होने

के कारण पूर्णतया अनुचित हैं और इसलिए अपास्त किए जाने योग्य हैं । अत: वर्तमान द्वितीय अपील में विधि के सारभूत प्रश्न के लिए यही उत्तर है । (पैरा 17, 18 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2002]	ए. आई. आर. 2002 मद्रास 1 : **काशी गोंदर** बनाम **चिन्नपय्या गोंदर** ;	15
[1994]	ए. आई. आर. 1994 (एन. ओ. सी.) 39 मद्रास : **नरसिम्हन** बनाम **पेरुमल (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि** ;	12
[1982]	ए. आई. आर. 1982 मद्रास 281 : **पोन्नूचामी सरवई** बनाम **बालसुब्रमण्यन** ;	12
[1981]	ए. आई. आर. 1981 मद्रास 351 : **दुरईसामी रेड्डियार और एक अन्य** बनाम **सरोजा अम्मल और एक अन्य** ;	12
[1978]	ए. आई. आर. 1978 मद्रास 54 : **रामास्वामी नायडू और एक अन्य** बनाम **गोपाल कृष्णन नायडू और अन्य** ;	12, 15, 19
[1975]	ए. आई. आर. 1975 पटना 140 : **श्रीमती समर्थी देवी** बनाम **परशुराम पांडे और अन्य** ;	12
[1964]	ए. आई. आर. 1964 उड़ीसा 212 : **अधिकारी नारायणम्मा** बनाम **अधिकारी थबीतू नायडू** ;	12, 15
[1960]	ए. आई. आर. 1960 मैसूर 97 : **रेवप्पा** बनाम **माधव राव और एक अन्य** ;	12, 15
[1909]	(1909) 10 कलकत्ता एल. जे. 644 : **सागरचंद्र मंडल** बनाम **दिगम्बर मंडल** ।	19

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1996 की द्वितीय अपील सं. 106.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से	सर्वश्री के. एस. गोपाल कृष्णन और टी. सी. कृष्णन
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री पी. विद्यासागर और पी. जगदीश चन्द्र प्रसाद

न्यायमूर्ति ए. शंकर नारायण – पुत्तूर के प्रधान जिला मुंसिफ की फाइल पर के मूल वाद सं. 327/1984 में वादी श्रीमती किराला वेंकटम्मा ने, जिसने पुत्तूर के अधीनस्थ न्यायाधीश की फाइल पर 1991 की अपील वाद सं. 14 फाइल की थी, असफल होकर सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे आगे संक्षेप में 'संहिता' कहा गया है) की धारा 100 के अधीन वर्तमान द्वितीय अपील फाइल की है ।

2. अपीलार्थी ने वाद-अनुसूची में दी गई संपत्ति में अपने अधिकार और हक की घोषणा के लिए और प्रतिवादी सं. 1 से 5 को अपने कब्जे में हस्तक्षेप करने से रोकने तथा वाद-संपत्ति का उपभोग करने के लिए स्थायी व्यादेश जारी करने हेतु वाद फाइल किया था ।

3. वाद संपत्ति में मद सं. 1 और 2 सम्मिलित हैं । मद सं. 1 शुष्क भूमि है जिसका माप 0 एकड़ 49 सेन्ट है और जो 1 एकड़ 66 सेन्ट भूमि का भाग है और यह भूमि सर्वेक्षण सं. 173/1 में स्थित है जिसमें सर्वेक्षण सं. 176/6 में कुंए के अधिकार के साथ पम्प सेट लगा हुआ है और कुंए में 1/2 भाग के अधिकार का तथा उसमें लगे हुए उपकरणों और उसमें की नालियों, वृक्षों इत्यादि के संबंध में दावा किया गया है और मद सं. 2 एक मकान है जिसका माप पूर्व-पश्चिम 25 गज और उत्तर-दक्षिण 20 गज है और जिसके संबंध में विनिर्दिष्ट सीमाएं दी गई हैं ।

4. वर्तमान द्वितीय अपील के लंबन के दौरान एकमात्र अपीलार्थी की मृत्यु हो गई और इसलिए उसके भाई की पुत्री को उसके विधिक प्रतिनिधि होने के नाते अपीलार्थी सं. 2 के रूप में अभिलेख पर पक्षकार बनाया गया है । प्रत्यर्थी सं. 2 की भी मृत्यु हो गई और उसके विधिक

प्रतिनिधि अन्य प्रत्यर्थियों के रूप में पहले से ही अभिलेख पर मौजूद हैं ।

5. हमारे समक्ष का अपीलार्थी सं. 1 उपर्युक्त वाद में वादी है तथा प्रत्यर्थी सं. 1 से 5 उक्त वाद में प्रतिवादी हैं ।

6. सुविधा के लिए हमारे समक्ष के पक्षकारों को उपर्युक्त वाद में पक्षकारों के नामों की स्थिति से निर्दिष्ट किया गया है ।

7. 1984 का मूल वाद सं. 327 मृतक वादी-किराला वेंकटम्मा द्वारा उपर्युक्त अनुतोषों के लिए फाइल किया गया था । उसने यह पक्षकथन किया था कि प्रतिवादी सं. 2 उसका भाई है । प्रतिवादी सं. 1 और 3 उसके पुत्र हैं । प्रतिवादी सं. 4 और 5 क्रमश: प्रतिवादी सं. 1 और 3 की पत्नियां हैं और वे सभी साथ-साथ रह रहे हैं ।

(i) वाद अनुसूची में दी गई संपत्ति मूल रूप से वादी के पति किराला नरसय्या की थी और उसकी मृत्यु के पश्चात् वाद संपत्ति विरासत के द्वारा उसे प्राप्त हुई क्योंकि उनकी कोई संतान नहीं थी ।

(ii) उसने तारीख 19 दिसंबर, 1969 को प्रतिवादी सं. 1 के हक में एक दस्तावेज अर्थात् व्यवस्थापन-विलेख निष्पादित किया था । प्रतिवादी सं. 1 उस समय अप्राप्तवय था और इसलिए यह विलेख उसके पिता प्रतिवादी सं. 2 की संरक्षकता के अधीन निष्पादित किया गया था, जिसमें यह उल्लेख किया गया था कि वह अपने जीवनकाल के दौरान वादान्तर्गत संपत्ति पर काबिज रहेगी और उसका उपभोग करेगी और प्रतिवादी सं. 1 और 2 उससे ठीक प्रकार से व्यवहार करेंगे और तत्पश्चात् उसकी मृत्यु होने की दशा में उसकी अंत्येष्टि करने के पश्चात् प्रतिवादी सं. 1 को संपत्ति में आत्यंतिक अधिकार प्राप्त होंगे ।

(iii) तथापि, यह अभिकथित किया गया है कि उक्त विलेख के निष्पादन के पश्चात् प्रतिवादियों द्वारा उससे दुर्व्यवहार किया गया और इसलिए उसने तारीख 21 जनवरी, 1971 को एक रजिस्ट्रीकृत विलेख का निष्पादन करके पूर्वतर विलेख को रद्द कर दिया । उसके पक्षकथनानुसार उसने पूर्वतर हिताधिकारी को कब्जा प्रदत्त नहीं किया था और वह संपत्ति पर सतत् रूप से काबिज रही थी और उसने वाद संपत्ति का सतत् रूप से उपभोग किया था और इसलिए उसने उपर्युक्त अनुतोषों की

ईप्सा की ।

8. विचारण न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी सं. 1 ने लिखित कथन फाइल किया और प्रतिवादी सं. 2 और 4 ने प्रतिवादी सं. 1 के लिखित कथन का अनुसरण करते हुए ज्ञापन फाइल किया । प्रतिवादी सं. 3 और 5 के विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की गई ।

(i) उन्होंने नातेदारी और 1969 के रजिस्ट्रीकृत विलेख के निष्पादन को स्वीकार किया है तथापि, उन्होंने यह दावा किया है कि वादी-अपीलार्थी द्वारा कब्जा प्रदान कर दिया गया था । उन्होंने यह स्वीकार किया है कि वादी ने व्यवस्थापन-विलेख रद्द कर दिया था तथापि, उन्होंने यह कहा है कि उन्हें 25 अप्रैल, 1975 के एक सप्ताह पूर्व उस विलेख के निष्पादन के बारे में पता चला और इस तारीख को वादी द्वारा एक पत्र का निष्पादन किया गया था ।

(ii) उन्होंने यह दावा किया कि वादी को व्यवस्थापन विलेख रद्द करने का कोई अधिकार नहीं था । उन्होंने यह स्वीकार किया कि यद्यपि प्रतिवादी सं. 1 को व्यवस्थापन-विलेख की तारीख को वाद संपत्तियों के ऊपर कब्जा नहीं दिया गया था तथापि, बाद में वादी ने उसे वाद संपत्ति का कब्जा दे दिया था जैसाकि तारीख 25 अप्रैल, 1975 के पत्र द्वारा साबित है । यह कहते हुए अन्य अभिकथनों से भी इनकार किया गया था यद्यपि कोटर का संदाय कर दिया गया था तथापि, वस्तुत: धनराशि उसकी (प्रतिवादी सं. 1 की) ओर से संदत्त की गई थी ।

(iii) उन्होंने यह कथन किया है कि वादी ने उन्हें सूचना दिए बिना दूसरे भाई बालारमय्या को अनुज्ञात किया जो अपने पुत्र बालचंद्रय्या को वाद संपत्ति दिलाने के लिए आशयित था और इसलिए उसने 1971 के अक्तूबर मास में उसके साथ रहना आरंभ कर दिया और उनके द्वारा अनुरोध करने पर भी वापस नहीं लौटा । उनके अनुसार 1975 के अप्रैल मास के द्वितीय सप्ताह में वह उनके मकान पर आई और उसे यह बताया कि उक्त बालारमय्या द्वारा उसके साथ धोखा किया गया है और उसने तारीख 25 अप्रैल, 1975 का पत्र निष्पादित करके वाद संपत्तियों के ऊपर कब्जे के परिदान की पुष्टि की ।

9. विचारण न्यायालय ने सात विवाद्यक विरचित किए, जो इस प्रकार हैं :-

1. क्या वादी को वाद संपत्ति में हक प्राप्त है ?

2. क्या तारीख 20 जनवरी, 1971 का रद्दकरण-विलेख विधिमान्य है और प्रत्यर्थियों पर आबद्धकर है ?

3. क्या वादी वाद संपत्ति पर काबिज है ?

4. क्या वादी को उसके प्रतिकूल कब्जे द्वारा भी हक प्राप्त हो गया है ?

5. क्या वादी यथा अनुरोध की गई घोषणा के लिए हकदार है ?

6. क्या वादी स्थायी व्यादेश के लिए हकदार है ?

7. वादी किस अनुतोष के लिए हकदार है ?

10. विचारण न्यायालय के समक्ष वादी की ओर से पी. डब्ल्यू. 1 से पी. डब्ल्यू. 3 की परीक्षा कराई गई और प्रदर्श ए-1 से प्रदर्श ए-6 को चिह्नांकित किया गया । दस्तावेजों में प्रदर्श ए-5 वह रजिस्ट्रीकृत व्यवस्थापन-विलेख है जो वादी द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के हक में निष्पादित किया गया था और प्रदर्श ए-6 तारीख 21 जनवरी, 1971 का रद्दकरण विलेख है जो वर्तमान प्रयोजन के लिए सुसंगत है । यह कहा गया है कि प्रदर्श बी-1 तारीख़ 27 दिसंबर, 1967 को पी. डब्ल्यू. 1 के हक में कैलासम्मा द्वारा निष्पादित रजिस्ट्रीकृत व्यवस्थापन-विलेख है और प्रदर्श बी-3 तारीख 25 अप्रैल, 1975 का पत्र है जो वादी द्वारा तारीख 25 अप्रैल, 1975 को निष्पादित किया गया बताया गया है जो सुसंगत दस्तावेज है और इसके अतिरिक्त दोनों पक्षकारों द्वारा राजस्व विभाग द्वारा प्रमाणित प्रतियां भी दाखिल की गई हैं जो सुसंगत दस्तावेज हैं ।

11. विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 2, 3 और 4 पर एक साथ चर्चा की । प्रदर्श बी-1 से जो तारीख 27 दिसंबर, 1967 का रजिस्ट्रीकृत व्यवस्थापन-विलेख है, यह उपदर्शित होता है कि मूल रूप से वादी की माता ने वाद संपत्ति से संबंधित वाद फाइल किया था और उसने उक्त रजिस्ट्रीकृत व्यवस्थापन-विलेख के अधीन वादी को वाद-

संपत्तियां दी थीं । इस बात को साबित करने के लिए उक्त दस्तावेज फाइल किया गया है । विचारण न्यायालय ने रजिस्ट्रीकृत व्यवस्थापन-विलेख की प्रति प्रदर्श ए-5 का निर्वचन करते हुए यह संप्रेक्षण किया कि दस्तावेज का नाम महत्वपूर्ण नहीं है अपितु उसके लेखन और व्यक्ति के आशय पर ध्यान दिया जाना चाहिए और तद्द्वारा प्रदर्श ए-5 की परीक्षा करने पर यह पाया गया कि वादी का आशय केवल विल का निष्पादन करना था न कि व्यवस्थापन-विलेख का निष्पादन करना, क्योंकि उसने अपने जीवनकाल के दौरान अपना हित बरकरार रखा था और संपत्ति केवल उसकी मृत्यु के पश्चात् ही निहित होनी थी और यहां तक कि उसने कब्जा भी अपने पास रखा था और ये सभी बातें इस निष्कर्ष के लिए पर्याप्त हैं कि यह एक विल थी और मात्र इस कारण कि इसे व्यवस्थापन-विलेख का नाम दिया गया है, यह नहीं कहा जा सकता कि यह एक व्यवस्थापन-विलेख है, यदि आशय का निष्कर्ष निकाला जाए और तद्द्वारा प्रतिवादियों द्वारा किए गए कथन को खारिज करते हुए यह मत व्यक्त किया कि ऐसा प्रतीत होता है कि उसके अशिक्षित होने का असम्यक् फायदा उठाते हुए दस्तावेज का नाम भी गलत रूप से उल्लिखित किया गया था और यह भी मत व्यक्त किया गया कि डी. डब्ल्यू. 3 और डी. डब्ल्यू. 4 के साक्ष्य का कोई महत्व नहीं है और न ही उनका साक्ष्य प्रतिवादियों के पक्षकथन को कोई फायदा पहुंचाता है और इस प्रकार मत व्यक्त करते हुए उपर्युक्त विवाद्यकों को वादी के हक में और प्रतिवादियों के विरुद्ध विनिश्चित किया गया ।

(i) जहां तक विवाद्यक सं. 1 का संबंध है, चूंकि पक्षकारों के बीच इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि वाद संपत्तियां पूर्ण रूप से वादी की संपत्तियां हैं तथापि, प्रदर्श बी-1 और प्रतिवादियों के पक्षकथन का निर्देश करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रदर्श ए-1 से प्रदर्श ए-4 द्वारा वाद से संबंधित संपत्तियों के ऊपर मृतक-वादी का हक़ साबित है ।

(ii) जहां तक विवाद्यक सं. 5 और 6 का संबंध है, अन्य विवाद्यकों के संबंध में अभिलिखित निष्कर्षों के आधार पर यह अभिनिर्धारित किया गया कि ये विवाद्यक वादी के हक में जाते हैं और तद्द्वारा तारीख़ 30 सितंबर, 1991 को यथा अनुरोध किए गए रूप में खर्चों के साथ वाद डिक्री किया गया ।

12. प्रतिवादी सं. 1 ने तारीख 30 सितंबर, 1991 के उक्त निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 के रूप में अन्य प्रतिवादियों को पक्षकार बनाते हुए 1991 का अपील-वाद सं. 14 फाइल किया था ।

(i) विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने उन निष्कर्षों का निर्देश करते हुए जो विचारण न्यायालय द्वारा उल्लिखित किए गए थे और विचारण के लिए नियत विवाद्यकों पर अभिलिखित निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए इस आशय का बिन्दु विचार के लिए विरचित किया कि क्या अपीलार्थी-प्रतिवादी सं. 1 की अपील विधि के अधीन स्वीकार किए जाने योग्य है ।

(ii) विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने तारीख 19 दिसंबर, 1969 के रजिस्ट्रीकृत मूल व्यवस्थापन-विलेख पर जिसे प्रदर्श बी-2 के रूप में चिह्नांकित किया गया है और जिसकी प्रति वादी की ओर से भी प्रदर्श ए-5 के रूप में चिह्नांकित की गई है, मुख्य रूप से बल देते हुए और प्रदर्श ए-6 का जो तारीख 21 जनवरी, 1971 का रद्दकरण विलेख है, निर्देश करते हुए दस्तावेज प्रदर्श ए-5/बी-2 का इस बाबत निर्वचन किया कि क्या इसका विल के रूप में या दान के रूप में निर्वचन किया जा सकता है और पैरा सं. 10 में स्थानीय भाषा में कतिपय लेखन को उद्धृत करते हुए इसमें किए गए उल्लेख पर विस्तार से विचार करते हुए यह संप्रेक्षण किया कि व्यवस्थापक ने संपत्ति में अपने हित को पेश करने वाले के हक में छोड़ा था और उसने वाद संपत्ति में केवल आय को न कि इससे अधिक उपभोग को अपने लिए आरक्षित रखा था और उसने यह भी स्पष्ट किया था कि उसका आगे संपत्ति में कोई अधिकार नहीं रहेगा और यह भी प्रकथन किया था कि उसे भविष्य में इसे परिवर्तित करने या रद्द करने का अधिकार नहीं होगा और यहां तक कि इसमें यह खंड भी सम्मिलित किया गया था कि उसे उसको अभिखंडित करने का कोई अधिकार नहीं होगा और इस बारे में **रामास्वामी नायडू और एक अन्य** बनाम **गोपाल कृष्णन नायडू और अन्य**[1] और **पोन्नूचामी सरवई** बनाम

[1] ए. आई. आर. 1978 मद्रास 54.

बालसुब्रमण्यन[1] वाले मामलों का इस प्रतिपादना के लिए अवलंब लिया गया है कि केवल नामावली को कोई महत्व नहीं दिया जा सकता और इसलिए दस्तावेज की अन्तर्वस्तु पर विचार किया जाएगा और इस संबंध में और अपीलार्थी द्वारा इस आशय के लिए **नरसिम्हन** बनाम **पेरुमल (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि**[2] और **दुरईसामी रेड्डियार और एक अन्य** बनाम **सरोजा अम्मल और एक अन्य**[3] वाले मामलों के विनिश्चयों का अवलंब लेते हुए इस आशय की दलील दी गई है कि व्यवस्थापक के हित का अन्तरण मानदंड है ; अपीलार्थी द्वारा **श्रीमती समर्थी देवी** बनाम **परशुराम पांडे और अन्य**[4], **अधिकारी नारायणम्मा** बनाम **अधिकारी थबीतू नायडू**[5] और **रेवप्पा** बनाम **माधव राव और एक अन्य**[6] वाले मामलों का इस निष्कर्ष के लिए अवलंब लिया गया है कि प्रदर्श बी-2 जो प्रदर्श ए-5 के समतुल्य है, एक व्यवस्थापन-विलेख है और व्यवस्थापक को इसे रद्द करने का कोई अधिकार नहीं था और इसलिए रद्दकरण-विलेख का कोई महत्व नहीं है और उसके रद्दकरण से कोई अंतर नहीं पड़ता और इसलिए मूल वाद में विचारण न्यायालय द्वारा पारित डिक्री को अपास्त करते हुए तारीख 12 जून, 1975 को अपील-वाद मंजूर किया गया है । मृतक वादी ने निचले विद्वान् अपील न्यायालय द्वारा तारीख 12 जून, 1995 को पारित उक्त निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर वर्तमान द्वितीय अपील फाइल की है । अपील के लंबन के दौरान एकमात्र अपीलार्थी और द्वितीय प्रत्यर्थी की मृत्यु हो गई । वादी-मृतक के भाई की पुत्री तुलसम्मा को अपीलार्थी सं. 2 के रूप में विधिक प्रतिनिधि के रूप में अभिलेख पर पक्षकार बनाया गया और प्रत्यर्थी सं. 1 और 3 को मृतक प्रतिवादी सं. 2 के विधिक प्रतिनिधियों के रूप में माना गया । इस न्यायालय द्वारा तारीख 8 फरवरी, 2011 को उपर्युक्त आदेश पारित किए गए थे ।

---

1 ए. आई. आर. 1982 मद्रास 281.

2 ए. आई. आर. 1994 (एन. ओ. सी.) 39, मद्रास ।

3 ए. आई. आर. 1981 मद्रास 351.

4 ए. आई. आर. 1975 पटना 140.

5 ए. आई. आर. 1964 उड़ीसा 212.

6 ए. आई. आर. 1960 मैसूर 97.

13. चूंकि प्रारंभिक रूप से विधि के मूलभूत प्रश्न इस प्रकार विरचित नहीं किए गए थे अपितु इन्हें आधार सं. 2 और 3 के रूप में निर्दिष्ट किया गया था जो विधि के सारभूत प्रश्न हैं और विधि के निम्नलिखित मूलभूत प्रश्न विरचित किए गए थे :–

(i) क्या विद्वान् निचला अपील न्यायालय विचारण न्यायालय के तर्कों पर विचार किए बिना विचारण न्यायालय के निर्णय को उलटने में सही था ।

(ii) क्या विद्वान् निचला अपील न्यायालय प्रदर्श ए-5/बी-2 का व्यवस्थापन विलेख के रूप में निर्वचन करने में सही था क्योंकि सम्पूर्ण दस्तावेज का परिशीलन करने के बावजूद इसके नाम से यह प्रदर्शित होता है कि यह एक विल है जो मृतक वादी की मृत्यु पर ही प्रभावी होगी और उसकी मृत्यु के पश्चात् संपत्ति प्रतिवादी सं. 1 में निहित होगी तथा मृतक वादी द्वारा संपत्ति का कब्जा अपने पास रखा गया था ।

(iii) क्या विद्वान् निचला अपील न्यायालय विचारण न्यायालय के निर्णय को उलटने में सही था जबकि प्रदर्श ए-3 साबित नहीं हुआ था और जबकि राजस्व अभिलेख प्रदर्श ए-1 से प्रदर्श ए-4 से मृतक-वादी का कब्जा साबित हो गया था और विशेषतया जब प्रतिवादी सं. 1 ने अपने कब्जे को साबित करने के लिए कोई दस्तावेज फाइल नहीं किया ।

14. अपीलार्थी-वादियों के विद्वान् काउंसेल श्री टी. सी. कृष्णन का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेल श्री के. एस. गोपाल कृष्णन और प्रत्यर्थी सं. 1 प्रतिवादी सं. 1 के विद्वान् काउंसेल श्री पी. जगदीश चन्द्र प्रसाद का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेल श्री पी. विद्यासागर को सुना गया ।

15. दोनों विद्वान् काउंसेलों ने यह दलील दी है कि विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा अभिलिखित परस्पर विरोधी निष्कर्ष को जिसने व्यवस्थापन-विलेख के रूप में निर्वचन किया है, दृष्टिगत करते हुए केवल प्रदर्श ए-5/बी-2 की प्रकृति के बारे में विनिश्चय किया जाना है जबकि विचारण न्यायालय ने इसे विल के रूप में माना है और यह निष्कर्ष

वर्तमान द्वितीय अपील में संविवाद को हल करने के लिए पर्याप्त है । अत: यह आवश्यक है कि उक्त दस्तावेज में किए गए उल्लेख की दोनों पक्षकारों द्वारा अवलंब ली गई नजीरों को विचार में लेते हुए परीक्षा की जाए ।

(i) अपीलार्थी-वादी के विद्वान् काउंसेल श्री के. एस. गोपाल कृष्णन ने **रामास्वामी नायडू** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया है । माननीय मद्रास उच्च न्यायालय ने निर्णय के पैरा 2 में दस्तावेज का निर्देश किया है जिसमें दस्तावेज को एक व्यवस्थापन-विलेख के रूप में मानते हुए इसमें अन्तर्विष्ट कतिपय सामग्री का निर्देश किया है । इसके पश्चात् कुछ सामान्य परीक्षाओं और विशेषताओं का इस बारे में निर्देश किया है कि क्या बातें एक विल गठित करेंगी और क्या बातें एक व्यवस्थापन-विलेख गठित करेंगी जिनका विभिन्न विनिश्चयों में उल्लेख किया गया है । तथापि, मुख्य परीक्षा यह पता लगाना है कि क्या दस्तावेज एक विल है या कोई व्यवस्थापन-विलेख है और इस बारे में यह सुनिश्चित करना है कि क्या संपत्ति में ब्याज का विन्यास (व्यवस्था) व्यवस्थापी के हक में मौजूद है और क्या विन्यास निष्पादन कर्ता की मृत्यु पर प्रभावी होता है और यदि विन्यास निष्पादन कर्ता की मृत्यु पर प्रभावी होता है तो यह एक विल होगी । तथापि, यदि निष्पादन कर्ता संपत्ति में अपना हित स्पष्ट करता है और अपना हित व्यवस्थापी में निहित करता है तो दस्तावेज एक व्यवस्थापन होगा और तत्पश्चात् दस्तावेज के महत्वपूर्ण खंडों का निर्देश किया जो पैरा 4 में उल्लिखित हैं :-

> 4. वर्तमान मामले में एक अन्य महत्वपूर्ण परिस्थिति भी है जो विशेष उल्लेख और विचार के लिए प्रेरित करती है और वह इस आशय का खंड है कि निष्पादन कर्ता संपत्तियों से होने वाली आय का अपने जीवनकाल में स्वयं उपभोग करेगी और उसे संपत्ति पर कोई भार डालने का कोई अधिकार नहीं होगा और न ही अपने जीवनकाल के दौरान किसी भी प्रकार से इसको स्थानांतरित करने का अधिकार होगा । यह खंड सामान्यतया एक ऐसे दस्तावेज में उल्लिखित होता है जो एक व्यवस्थापन हो और व्यवस्थापी के हक में हित का अंतरण हो किन्तु कब्जे का अधिकार और आय का

अधिकार भविष्य की तारीख के लिए स्थगित किया गया है । तथापि, जैसाकि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि मूल और एकमात्र विश्वसनीय परीक्षा यह पता लगाना है कि क्या मुख्य विन्यास खंड के अधीन व्यवस्थापी में कोई हित अन्तरित किया गया था अथवा विन्यास निष्पादन कर्ता की मृत्यु पर प्रभावी होना है । यदि ऐसा निर्वचन किया जाता है तो हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि कोई विन्यास मौजूद नहीं था और विन्यास निष्पादन कर्ता की मृत्यु पर प्रभावी होना है और तब आय के उपभोग से संबंधित खंड और निष्पादन कर्ता के अंतरण की शक्तियों को अपने पास रखना निष्प्रभावी हो जाएगा और विन्यास प्रभावी नहीं होगा और न ही विधि के अधीन निष्पादन कर्ता को उपलब्ध अधिकारों को प्रभावित करेगा ।

चूंकि वर्तमान मामले में मुख्य विन्यास खंड के अनुसार जैसाकि मैं ऊपर उल्लेख कर चुका हूं, वादियों ने निष्पादन कर्ता की मृत्यु पर संपत्तियां प्राप्त की हैं और उन्होंने उसकी मृत्यु के पश्चात् आत्यंतिक रूप से संपत्तियों का उपभोग किया है इसलिए निष्पादन कर्ता की शक्तियों को निर्बंधित करने वाला खंड उनके हितों को लागू नहीं होगा और यह प्रस्तुत कर्ता में विन्यास है । यद्यपि किसी दस्तावेज का निर्वचन दस्तावेज में प्रयुक्त भाषा के निर्देश में किया जाना चाहिए और अन्य दस्तावेजों के निर्वचन के लिए दिए गए विनिश्चयों के बारे में यह कहा जा सकता है कि वे कोई सहायता नहीं पहुंचाते हैं और ये विनिश्चय ऐसे कतिपय विनिश्चित मामलों में निर्देश करने के लिए उपयोगी हैं जहां निर्वचन के लिए मार्गदर्शन के रूप में समान खंडों का निर्वचन किया जाए । हाल्सबरी कृत लॉज आफ इंग्लैंड, साइमोन्ड्स एडीशन, वाल्यूम 39 पृष्ठ 844 पर इस प्रकार संप्रेक्षण किया गया है –

> "किसी खंडनीय विल की प्रकृति को घोषणा द्वारा भी समाप्त नहीं किया जा सकता और यह अखंडनीय होगी और इसे किसी प्रसंविदा द्वारा भी खंडित नहीं किया जा सकता ।"

इसी संस्करण के पृष्ठ सं. 838 पर इस प्रकार संप्रेक्षण किया गया है –

"कोई विल स्वयं में खंडनीय प्रकृति की हो सकती है और इसलिए किसी व्यक्ति को इसका विधान करना चाहिए और अंतिम विल पूर्ण रूप से अखंडनीय होगी और उसमें अधिकतर निबंधन अभिव्यक्त होंगे तथापि, वह इसे रद्द कर सकता है क्योंकि उसका अपना कार्यकृत उसे अखंडनीय बनाने के लिए विधि के निर्णय को परिवर्तित नहीं कर सकता जो कि प्रकृति में स्वयं खंडनीय है ।"

सागरचंद्र मंडल **बनाम** दिगम्बर मंडल (1909) 10 कलकत्ता एल. जे. 644 वाले एक पूर्वतर मामले का विनिश्चय भी इसी आशय का है जिसमें इस प्रकार मत व्यक्त किया गया है –

'अत: यदि कोई लिखत प्रथम दृष्टि में ही वसीयती प्रकृति की है तो मात्र यह परिस्थिति कि वसीयतकर्ता ने इसे खंडनीय बनाया है, इसकी प्रकृति को परिवर्तित नहीं करती, जैसाकि लार्ड कोक ने वाइनियर (1610) 8 कोक 82 (ए) वाले मामले में कहा है –

यदि मैं किसी वसीयत या अंतिम विल को खंडनीय बनाता हूं तो भी मैं किसी कार्य के लिए या अपने शब्दों द्वारा उसे खंडित कर सकता हूं तथापि, उसे अखंडनीय बनाने के लिए विधि के निर्णय को परिवर्तित नहीं कर सकता जो अपने आप में खंडनीय प्रकृति की है ।'

लागू किए जाने के लिए मुख्य परीक्षा यह है कि क्या विन्यास विलेख के निष्पादन कर्ता के जीवनकाल के दौरान प्रभावी होगा अथवा यह उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रभावी होगा । वस्तुत: यदि यह पश्चात्वर्ती प्रकृति का है तो यह उसके जीवनकाल के दौरान परिवर्ती और खंडनीय है ।

निष्पादन कर्ता द्वारा अपने जीवनकाल के दौरान आय के उपभोग से संबंधित खंड के संबंध में उपबंध इस आशय का है कि निष्पादन कर्ता अपने जीवनकाल के दौरान किसी भी प्रकार से संपत्ति अंतरित नहीं करेगी या करेगा और इस संबंध में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने 1970 के टी. सी. सं. 372, तारीख

13 जुलाई 1976 को विनिश्चित (1977 टैक्स एल. आर. 1187) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि ऐसे निर्बंधनात्मक खंड किसी भी प्रकार से विन्यास को प्रभावित नहीं करते और ऐसा दस्तावेज एक विल है । उपर्युक्त विनिश्चय उस निर्वचन का समर्थन करते हैं जो मैंने प्रश्नगत दस्तावेज के संबंध में किया है । अत: मैं यह अभिनिर्धारित करता हूं कि दस्तावेज एक विल है न कि एक व्यवस्थापन-विलेख । द्वितीय अपील विफल होती है और तद्नुसार यह खारिज की जाती है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।"

(ii) प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों के विद्वान् काउंसेल श्री पी. विद्यासागर ने इस प्रतिपादना के लिए **रेवप्पा** (पूर्वोक्त) वाले मामले का अवलंब लिया है कि पूर्व में किसी पक्षकार द्वारा की गई स्वीकृति के प्रमाणक मूल्य के संबंध में ऐसा माना जा सकता है कि जब तक परिकल्पना खंडित न हो जाए, स्वीकार किए गए तथ्य को साबित किया जाना माना जाना चाहिए और हिन्दू विधि द्वारा विनियमित व्यक्ति द्वारा जंगम संपत्ति का कोई दान या कब्जे का परिदान आवश्यक नहीं है ।

(क) विद्वान् काउंसेल ने इस प्रतिपादना के लिए **काशी गोंदर** बनाम **चिन्नपय्या गोंदर**[1] वाले मामले का अवलंब लिया है कि जहां निष्पादित व्यवस्थापन विलेख रजिस्ट्रीकृत कराया गया हो और स्वीकार किया गया हो वहां उसे रद्द नहीं किया जा सकता और व्यवस्थापन कर्ता द्वारा व्यवस्थापी की ओर से विफलता का आधार उसे रद्द करने के लिए एक आधार नहीं है और अन्य के हक में पश्चात्वर्ती व्यवस्थापन-विलेख के निष्पादन का अन्य के लिए कोई उपयोग नहीं है और इसलिए प्रथम विलेख के अधीन व्यवस्थापी व्यवस्थापन की विषयवस्तु अर्थात् भूमि का कब्जा ले सकता है ।

(ख) विद्वान् काउंसेल ने इस प्रतिपादना के लिए **अधिकारी नारायणम्मा** (पूर्वोक्त) वाले मामले का अवलंब लिया है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 23 के उपबंध हिन्दू विधि द्वारा विनियमित व्यक्तियों द्वारा जंगम संपत्ति के किए गए दोनों को लागू

---

[1] ए. आई. आर. 2002 मद्रास 1.

होते हैं और यह धारा दान की लिखत के सम्यक् निष्पादन पर बल देती है और यह संपत्ति के कब्जे के परिदान पर अधिक बल नहीं देती ।

अत: प्रतिवादियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने इस दस्तावेज की अपेक्षित परीक्षा करने के लिए विश्लेषण करने में और यह निष्कर्ष निकालने में गलती नहीं की है कि प्रदर्श ए-5/बी-2 एक व्यवस्थापन-विलेख है न कि एक विल और इसलिए इसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है क्योंकि इसमें विधि का सारभूत प्रश्न अन्तर्वलित नहीं है ।

(iii) विद्वान् काउंसेल श्री के. एस. गोपाल कृष्णन ने बल देते हुए यह दलील दी है कि प्रदर्श ए-5/बी-2 में किसी विल की सभी विशेषताएं मौजूद हैं क्योंकि इसमें यह स्पष्ट उल्लेख है कि यह उसकी मृत्यु के पश्चात् ही प्रभावी होगी और इसमें संपत्ति के ऊपर कब्जा अपने पास रखा गया था और यह बात राजस्व दस्तावेजों से साबित है जिन्हें प्रदर्श ए-1 से ए-4 के रूप में चिह्नांकित किया गया है और ये तथ्य यह अभिनिर्धारित करने के लिए पूर्णतया पर्याप्त हैं कि प्रश्नगत दस्तावेज विल है न कि व्यवस्थापन-विलेख, क्योंकि प्रदर्श ए-5/बी-2 निष्पादन की तारीख को निष्पादनकर्ता ने प्रतिवादी सं. 1 में कोई हित निहित नहीं किया था और इसलिए विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने अन्यायोचित रूप से समुचित कारण दिए बिना विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए निष्कर्षों को उलट दिया है ।

16. दोनों पक्षों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा निर्दिष्ट और अवलंबित नजीरों के आधार पर दस्तावेज प्रदर्श ए-5/बी-2 की अन्तर्वस्तु की इस बारे में परीक्षा करने की आवश्यकता है कि क्या इसमें किसी विल की विशेषताएं हैं या किसी व्यवस्थापन-विलेख की ।

17. निचले न्यायालयों ने प्रदर्श ए-5/बी-2 की परीक्षा की है और प्राथमिक न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि इसमें किसी विल की सभी विशेषताएं मौजूद हैं और उसका नामकरण मानदंड नहीं है और तद्द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि प्रदर्श-5/बी-2 विल है और इसका व्यवस्थापन-विलेख के रूप में निर्वचन नहीं किया जा सकता जैसाकि कहा गया है ।

18. विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित उक्त निष्कर्ष के प्रतिकूल विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने प्रदर्श ए-5/बी-2 में किए गए कतिपय उल्लेख का निर्देश करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि यह एक व्यवस्थापन-विलेख है जिसका विल के रूप में निर्वचन नहीं किया जा सकता । विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने ऐसा निष्कर्ष निकालने के लिए मुख्य रूप से प्रदर्श ए-5/बी-2 में उल्लिखित कतिपय पदों (अभिव्यक्तियों) को विचार में लिया है । विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा विचार में लिया प्रथम उल्लेख इस आशय का है कि अनुसूचित संपत्तियां मुफ्त में और प्रतिफल दिए बिना दी गई हैं और व्यवस्थापक केवल अनुसूचित संपत्तियों से प्राप्त आय का उपभोग कर सकती है और इस बात को भी विचार में लिया गया कि न तो व्यवस्थापक ने और न ही उसके वारिसों ने अनुसूचित संपत्तियों में किसी अधिकार का दावा किया है और यह राय व्यक्त की कि इससे इस बात की पुष्टि होती है कि व्यवथापक ने संपत्ति में अपना हित प्रस्तुतकर्ता के हक में विन्यास कर दिया था और उसने जो कुछ आरक्षित रखा था वह केवल अनुसूचित संपत्तियों में आय का उपभोग है न कि इससे अधिक और तद्द्वारा प्रदर्श ए-5/बी-2 का व्यवस्थापन-विलेख के रूप में न कि एक विल के रूप में निर्वचन किया ।

19. निस्संदेह यह सही है कि प्रतिवादियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब ली गई नजीरें इस आशय की हैं कि जहां तक विलेख के रद्दकरण का संबंध है, व्यवस्थापी की ओर से व्यवस्थापक को बनाए रखने के लिए विफलता का आधार एक आधार नहीं है और इसलिए हिन्दू विधि द्वारा विनियमित किसी व्यक्ति द्वारा जंगम संपत्ति के दान में कब्जे का परिदान आवश्यक नहीं है । तथापि, वर्तमान मामले में ऐसा कुछ और भी है जिसकी परीक्षा किए जाने की आवश्यकता है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा **रामास्वामी नायडू** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अवलंब लिया गया विनिश्चय मद्रास उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा दिया गया था और विद्वान् न्यायालय को **सागरचंद्र मंडल** बनाम **दिगम्बर मंडल**[1] वाले पूर्वतर मामले का निर्देश

[1] (1909) 10 कलकत्ता एल. जे. 644.

करने का अवसर मिला था, जिसके सुसंगत भाग को नीचे उद्धृत किया जा रहा है :-

> "अत: यदि कोई लिखत प्रथमदृष्ट्या वसीयती प्रकृति की है तो मात्र यह परिस्थिति कि वसीयत कर्ता ने इसे अखंडनीय बनाया है, इसकी प्रकृति को परिवर्तित नहीं करती जैसाकि लार्ड कोक ने वाइनियर (पूर्वोक्त) वाले मामले में कहा है -
>
> > 'यदि मैं किसी वसीयत या अंतिम विल को खंडनीय बनाता हूं तो भी मैं किसी कार्य के लिए या अपने शब्दों द्वारा उसे खंडित कर सकता हूं तथापि, उसे अखंडनीय बनाने के लिए विधि के निर्णय को परिवर्तित नहीं कर सकता जो अपने आप में खंडनीय प्रकृति की है ।'
>
> लागू किए जाने के लिए मुख्य परीक्षा यह है कि क्या विन्यास विलेख के निष्पादन कर्ता के जीवनकाल के दौरान प्रभावी होगा अथवा यह उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रभावी होगा । वस्तुत: यदि यह पश्चात्वर्ती प्रकृति का है तो यह उसके जीवनकाल के दौरान परिवर्ती और खंडनीय है ।"

अत: **सागरचंद्र मंडल** (पूर्वोक्त) वाले मामले में घोषित विधि से स्पष्ट है कि मुख्य परीक्षा जो लागू की जानी है, इस बारे में है कि क्या विन्यास विलेख के निष्पादन कर्ता के जीवनकाल के दौरान प्रभावी है अथवा क्या यह उसकी मृत्यु के पश्चात् प्रभावी है और यह वस्तुत: पश्चात्वर्ती प्रकृति का है और निष्पादन कर्ता के जीवनकाल के दौरान परिवर्ती और खंडनीय बनाता है । अत: प्रदर्श ए-5/बी-2 में उल्लिखित खंड यह है कि इसके निष्पादन-कर्ता को इसे परिवर्तित करने का अधिकार नहीं है और इसलिए यह अभिनिर्धारित करने के लिए कोई आधार नहीं है कि यह व्यवस्थापन-विलेख से संबंधित विलेख है न कि विल से । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने 1970 के टी. सी. सं. 372 तारीख 13 जुलाई, 1976 को विनिश्चित (1977 टैक्स एल. आर. 1187) वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के विनिश्चय का भी इस आशय के लिए अवलंब लिया है कि दस्तावेज के निर्बंधनात्मक खंड किसी भी प्रकार से विन्यास को प्रभावी नहीं करते और इसलिए दस्तावेज एक विल है जहां निष्पादन कर्ता

ने खंड के संबंध में अपने जीवनकाल के दौरान आय के उपभोग का उपबंध किया है और उपबंध इस आशय का है कि निष्पादन कर्ता अपने जीवनकाल के दौरान किसी भी प्रकार से उल्लिखित संपत्ति का अंतरण नहीं करेगी । मद्रास उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने वर्तमान मामले में प्रदर्श ए-5/बी-2 चिह्नांकित दस्तावेज की प्रकृति के सदृश ही दस्तावेज की परीक्षा की थी जिसमें पैरा 3 में ऐसे ही तथ्यात्मक पहलू का इस प्रकार उल्लेख किया गया है :-

> "3. इस बारे में बहुत सी परीक्षाओं या विशेषताओं का कि क्या बातें विल गठित करती हैं और क्या व्यवस्थापन गठित करती हैं, अनेक विनिश्चयों में उल्लेख किया गया है । तथापि, मुख्य परीक्षा यह पता लगाना है कि कौन सा दस्तावेज विल गठित करता है और कौन सा दस्तावेज दान गठित करता है और क्या निष्पादन कर्ता द्वारा व्यवस्थापी के हक में संपत्ति के हित का विन्यास किया गया है अथवा क्या विन्यास निष्पादन कर्ता की मृत्यु पर प्रभावी होगा । यदि विन्यास निष्पादन कर्ता की मृत्यु पर प्रभावी होता है तो यह एक विल होगी । तथापि, यदि निष्पादन कर्ता संपत्ति में अपने हित को छोड़ता है और व्यवस्थापी में अपना हित निहित करता है तो दस्तावेज एक व्यवस्थापन दस्तावेज होगा । सामान्य सिद्धांत यह है कि दस्तावेज को सम्पूर्णत: पढ़ा जाना चाहिए और दस्तावेज की विषयवस्तु महत्वपूर्ण होती है न कि उसका प्ररूप अथवा नामकरण जिसका पक्षकारों ने अनुसरण किया है । दस्तावेज में विभिन्न खंड केवल यह पता लगाने के लिए मार्गदर्शक होते हैं कि क्या निष्पादन कर्ता का हित अव्यवहित रूप से समाप्त हो गया है या क्या व्यवस्थापन निष्पादन कर्ता की मृत्यु पर प्रभावी होगा ।
>
> यदि विन्यास से संबंधित खंड स्पष्ट और असंदिग्ध हैं तो अधिकतर अन्य खंड निष्प्रभावी और स्पष्टकरणीय होंगे और वे स्वत: विन्यास की प्रकृति को परिवर्तित नहीं कर सकते । उदाहरण स्वरूप किसी आधार पर विलेख के रद्दकरण को प्रतिषिद्ध करने वाला

खंड स्वत: दस्तावेज की प्रकृति को परिवर्तित नहीं करेगा, यदि दस्तावेज के अधीन प्रस्तुतकर्ता में विन्यास नहीं किया गया था । ऐसे किसी मामले में निषेधात्मक रद्दकरण खंड विधि के प्रतिकूल होगा और इसलिए निष्प्रभावी होगा । इसके प्रतिकूल यदि दस्तावेज एक व्यवस्थापन है तो मात्र इस कारण कि रद्दकरण का अधिकार दिया गया है, यह व्यवस्थापन के रूप में दस्तावेज की प्रकृति को परिवर्तित नहीं करेगा, क्योंकि ऐसा कोई खंड विधि के विरुद्ध होगा और इसलिए अविधिमान्य होगा । न तो दस्तावेज का नामकरण और न ही यह तथ्य कि इसे रजिस्ट्रीकृत कराया गया था, अधिकतर मामलों में कोई सहायता प्रदान करेगा जब तक कि विन्यास पूर्णतया अस्पष्ट और बाह्य प्रकृति का न हो और खंड के निर्वचन की आवश्यकता न हो ।"

यदि प्रदर्श ए-5/बी-2 की परीक्षा की जाए तो मुख्य उल्लेख इस आशय का है कि कर्ता या निष्पादन कर्ता की मृत्यु के पश्चात् अनुसूची में उल्लिखित संपत्तियों पर हिताधिकारी अर्थात् इस मामले के प्रतिवादी सं. 1 द्वारा संपत्तियां कब्जे में ली जाएंगी और तत्पश्चात् वह अंतरण के अधिकार के साथ चाहे वह दान द्वारा हो या संपत्ति के विक्रय द्वारा, सभी आत्यंतिक अधिकारों सहित संपत्ति के अनन्य स्वामी के रूप में उपभोग करेगा । विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा इस विशिष्ट उल्लेख का पूर्ण रूप से गलत निर्वचन किया गया है । इसके प्रतिकूल विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने किसी भी प्रकार से इस सीमा तक संप्रेक्षण किया है कि निष्पादन कर्ता का अधिकार व्यवस्थापन द्वारा हिताधिकारी के हक में अंतरित हो गया था और यह निष्कर्ष पूर्णतया उस निष्कर्ष के विरुद्ध जाता है जिसका निष्पादन कर्ता द्वारा प्रदर्श ए-5/बी-2 में उल्लेख किया गया है । अत: यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि उपर्युक्त उल्लेख निष्पादन कर्ता की मृत्यु के पश्चात् ही व्यवस्थापी या हिताधिकारी के हक में आत्यंतिक अधिकार निहित करता है न कि प्रस्तुत कर्ता में आत्यंतिक अधिकारों के साथ । अत: संपत्तियों में अंतरण के अधिकार स्थगित रखे गए थे और यह शर्त रखी गई थी कि व्यवस्थापन

निष्पादन कर्ता की मृत्यु के पश्चात् ही हिताधिकारी के हक में प्रभावी होगा न कि प्रस्तुत कर्ता के हित में और दूसरे अर्थों में उस तारीख को जब निष्पादन कर्ता ने प्रदर्श ए-5/बी-2 का निष्पादन किया । अत: किसी भी दृष्टिकोण से जांच करने पर मूल दस्तावेज प्रदर्श ए-5/बी-2 का केवल विल के रूप में निर्वचन किया जा सकता है न कि व्यवस्थापन-विलेख के रूप में, यदि मद्रास उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ के विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा निर्दिष्ट किए गए उपर्युक्त विनिश्चयों में अधिकथित सिद्धांतों और **सागरचंद्र मंडल** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों को दृष्टिगत करते हुए परीक्षा की जाए तो अन्य कोई मत संभव नहीं है । अत: मूल दस्तावेज प्रदर्श ए-5/बी-2 को एक व्यवस्थापन-विलेख का नाम देने से ही एक व्यवस्थापन दस्तावेज नहीं बन जाता तथापि, यह एक विल है जिसमें किसी विल की सभी विशेषताएं मौजूद हैं । अत: विद्वान् निचले अपील न्यायालय द्वारा प्रदर्श ए-5/बी-2 के संबंध में अभिलिखित निष्कर्ष विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों के प्रतिकूल होने के कारण पूर्णतया अनुचित हैं और इसलिए अपास्त किए जाने योग्य हैं । अत: वर्तमान द्वितीय अपील में विधि के सारभूत प्रश्न के लिए यही उत्तर है ।

20. अत: विद्वान् अधीनस्थ न्यायालय, पुत्तूर द्वारा 1991 के ए. एस. सं. 14 में तारीख 22 जून, 1995 को पारित निर्णय और डिक्री को अपास्त करते हुए और विद्वान् मुख्य जिला मुंसिफ द्वारा 1984 के मूल वाद सं. 327 में तारीख 30 सितंबर, 1991 को पारित निर्णय और डिक्री को पुन: स्थापित करते हुए वर्तमान द्वितीय अपील मंजूर की जाती है । मामले की परिस्थितियों में पक्षकार अपने-अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे ।

21. द्वितीय अपील में लंबित प्रकीर्ण आवेदन, यदि कोई हों, बंद किए जाते हैं ।

अपील मंजूर की गई ।

मह.

(2019) 1 सि. नि. प. 448 इलाहाबाद

किरन धवन

बनाम

विवेक मित्तल और एक अन्य

तारीख 19 दिसंबर, 2018

न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता

संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) – धारा 106 और 107 – विनिर्माण प्रयोजन के लिए अरजिस्ट्रीकृत पट्टा – पट्टे के पर्यवसान के लिए 30 दिनों की सूचना – विधिमान्यता – पट्टा-विलेख में अधिकथित निबंधन और शर्तें धारा 107 को दृष्टिगत करते हुए पक्षकारों पर आबद्धकर न होना – पट्टे के बारे में यह नहीं समझा जा सकता कि पट्टा वर्ष-प्रतिवर्ष के लिए था – धारा 106 के अनुसार 6 मास की सूचना की आवश्यकता नहीं है – पट्टे के पर्यवसान के लिए 30 दिवसों की सूचना अविधिमान्य नहीं कही जा सकती ।

वादी-प्रत्यर्थियों द्वारा पुनरीक्षणकर्ता को संपत्ति सं. 11 बी/96 फाउन्डरी नगर, हाथरस रोड, आगरा से बेदखल कराने के लिए वाद संस्थित किया गया था । उक्त संपत्ति में एक हाल और एक टीन शेड सम्मिलित है । यह अभिकथित किया गया है कि चूंकि किराया 10,000/- रुपए प्रतिमास था इसलिए 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. 13 के उपबंध इस भवन को लागू नहीं होते हैं ; पुनरीक्षणकर्ता की किराएदारी तारीख 25 जुलाई, 2014 को जारी एक मास की सूचना द्वारा पर्यवसित की गई थी ; पुनरीक्षणकर्ता सूचना में विनिर्दिष्ट अवधि के पर्यवसान के पश्चात् भी परिसर खाली करने में विफल रही । पुनरीक्षणकर्ता ने यह अभिकथित करते हुए वाद का विरोध किया था कि किराया 5,000/- रुपए प्रतिमास था ; किराएदारी-परिसर कारखाना चलाने के लिए पट्टे पर लिया गया था ; तारीख 25 जुलाई, 2014 की सूचना उसकी किराएदारी को विधिमान्य रूप से पर्यवसित नहीं करती क्योंकि पट्टा विनिर्माण के प्रयोजन के लिए दिया गया था इसलिए 6 मास की

सूचना आवश्यक थी ; किराए का संदाय करने में कोई व्यतिक्रम नहीं किया गया था और इसलिए वाद खारिज किए जाने योग्य है । प्रान्तीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 25 के अधीन वर्तमान पुनरीक्षण अपर जिला और सेशन न्यायाधीश, न्यायालय सं. 12, आगरा द्वारा 2014 के एस. सी. सी. वाद सं. 65 में तारीख 17 फरवरी, 2018 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल किया गया है । वाद बेदखली और किराए की वसूली तथा अंत:कालीन लाभों के लिए फाइल किया गया था । पुनरीक्षणकर्ता ने निर्णय और डिक्री से व्यथित होकर यह पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया । पुनरीक्षण आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 के अधीन जंगम संपत्ति का कोई पट्टा वर्ष-प्रतिवर्ष या एक वर्ष से अधिक से किसी अवधि के लिए, अथवा वार्षिक किराए को परिरक्षित करने वाला कोई पट्टा केवल किसी रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा ही किया जा सकता है । धारा 107 का दूसरा पैरा जो उत्तर प्रदेश राज्य में लागू है, यह उपबंधित करता है कि जंगम संपत्ति के अन्य सभी पट्टे या तो किसी रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा किए जा सकते हैं अथवा किसी मौखिक करार द्वारा या जिसमें कब्जे का परिदान सम्मिलित हो । धारा 106 यह उपबंध करती है कि किसी संविदा या स्थानीय विधि या प्रतिकूल रूढ़ि के अभाव में कृषि या विनिर्माण प्रयोजनों के लिए जंगम संपत्ति का कोई पट्टा पट्टाकर्ता या पट्टाधारक की ओर से 6 मास की सूचना द्वारा वर्ष-प्रतिवर्ष पर्यवसित होने वाला समझा जाएगा । उत्तर प्रदेश संशोधन के अधीन सूचना की अवधि 30 दिवसों के लिए प्रति-स्थापित की गई है । बाद में 2003 के केन्द्रीय संशोधन अधिनियम 3 द्वारा पूर्वतर स्थिति को पुन:स्थापित कर दिया गया है तथापि, यह सुसंगत नहीं है क्योंकि सूचना को उक्त आधार पर आक्षेपित नहीं किया गया है । जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, वर्तमान मामले में पट्टा-विलेख ऐसे किराए के लिए परिरक्षित था जो मासिक आधार पर संदेय था । यद्यपि पट्टा-विलेख में यह उपबंध किया गया था कि पट्टाधारी प्रथम वर्ष की अवधि में बेदखल नहीं किया जा सकता तथापि, यह उपबंध किया गया था कि यदि पट्टा

एक वर्ष से अधिक की अवधि तक जारी रहता है तो द्वितीय वर्ष में परिसर का किराया 2,200/- रुपए और तृतीय वर्ष में 2,600/- रुपए होगा । करार के सभी खंडों के संयुक्त परिशीलन से यह प्रकट होता है कि यह पट्टा एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए किया गया था । चूंकि यह एक अरजिस्ट्रीकृत पट्टा था इसलिए इसमें अधिकथित निबंधन और शर्तें प्रवर्तनीय नहीं हैं और न ही रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 के साथ पठित संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 को दृष्टिगत करते हुए पक्षकारों पर आबद्धकर हैं । इसके प्रतिकूल यदि पट्टा ऐसे पट्टे के रूप में समझा जाए जो एक वर्ष से अनधिक की अवधि के लिए है और मासिक आधार पर किराया परिरक्षित किया गया है तो इसे 30 दिवसों की सूचना द्वारा विधिमान्य रूप से पर्यवसित किया जा सकता है । धारा 107 के लिए उत्तर प्रदेश संशोधन जो यह परिकल्पित करता है कि पट्टे धारा 107 के प्रथम पैरा के अन्तर्गत नहीं आते हैं, या तो किसी रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा किए जा सकते हैं अथवा किसी मौखिक लिखत द्वारा अथवा कब्जे के परिदान द्वारा और इसका विधिक स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । ऐसी दशा में निश्चित रूप से पट्टे की अवधि मास-प्रतिमास आधार पर होगी । अत: पट्टा इस तथ्य के होते हुए भी एक मास की सूचना द्वारा पर्यवसित होगा कि परिसर विनिर्माण प्रयोजन के लिए किराए पर दिया गया था । (पैरा 8 और 11)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2001] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 1696 :
समीर मुखर्जी बनाम **दविन्दर बजाज** ; 4, 9

[1995] ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 2482 :
श्री जानकी देवी भगत ट्रस्ट, आगरा बनाम
राम स्वरूप जैन ; 4, 10, 11

[1952] ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 23 = [1952] 1 एस. सी. आर. 269 :
राम कुमार बनाम **जगदीश चन्द्र देव, धवल देव और एक अन्य** । 9

पुनरीक्षणीय (सिविल) अधिकारिता : 2018 का एस. सी. सी. पुनरीक्षण सं. 35.

प्रान्तीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 25 के अधीन सिविल पुनरीक्षण आवेदन ।

आवेदक की ओर से श्री प्रकाश गिरि

विरोधी पक्षकार की ओर से डा. अखिलेश कुमार शर्मा

न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता – पुनरीक्षणकर्ता के काउंसेल श्री एस. पी. गिरि और वादी-प्रत्यर्थियों के काउंसेल डा. अखिलेश कुमार शर्मा को सुना गया ।

2. प्रान्तीय लघु वाद न्यायालय अधिनियम, 1887 की धारा 25 के अधीन वर्तमान पुनरीक्षण अपर जिला और सेशन न्यायाधीश, न्यायालय सं. 12, आगरा द्वारा 2014 के एस. सी. सी. वाद सं. 65 में तारीख 17 फरवरी, 2018 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल किया गया है । वाद बेदखली और किराए की वसूली तथा अंत:कालीन लाभों के लिए फाइल किया गया था ।

3. वादी-प्रत्यर्थियों द्वारा पुनरीक्षणकर्ता को संपत्ति सं. 11 बी/96 फाउन्डरी नगर, हाथरस रोड, आगरा से बेदखल कराने के लिए वाद संस्थित किया गया था । उक्त संपत्ति में एक हाल और एक टीन शेड सम्मिलित है । यह अभिकथित किया गया है कि चूंकि किराया 10,000/- रुपए प्रतिमास था इसलिए 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. 13 के उपबंध इस भवन को लागू नहीं होते हैं ; पुनरीक्षणकर्ता की किराएदारी तारीख 25 जुलाई, 2014 को जारी एक मास की सूचना द्वारा पर्यवसित की गई थी ; पुनरीक्षणकर्ता सूचना में विनिर्दिष्ट अवधि के पर्यवसान के पश्चात् भी परिसर खाली करने में विफल रही । पुनरीक्षणकर्ता ने यह अभिकथित करते हुए वाद का विरोध किया था कि किराया 5,000/- रुपए प्रतिमास था ; किराएदारी-परिसर कारखाना चलाने के लिए पट्टे पर लिया गया था ; तारीख 25 जुलाई, 2014 की सूचना उसकी किराएदारी को विधिमान्य रूप से पर्यवसित नहीं करती क्योंकि पट्टा विनिर्माण के प्रयोजन के लिए दिया गया था इसलिए 6 मास की सूचना आवश्यक

थी ; किराए का संदाय करने में कोई व्यतिक्रम नहीं किया गया था और इसलिए वाद खारिज किए जाने योग्य है ।

4. विचारण न्यायालय ने अवधारण के लिए चार विवाद्यक विरचित किए । प्रथम विवाद्यक के संबंध में यह अभिनिर्धारित किया गया कि परिसर का किराया 5,000/- रुपए प्रतिमास था । द्वितीय विवाद्यक का विनिश्चय करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि चूंकि किराया 2,000/- रुपए से अधिक है इसलिए 1972 के उत्तर प्रदेश अधिनियम सं. 13 के उपबंध लागू नहीं होते हैं । तीसरा विवाद्यक सूचना की विधिमान्यता से संबंधित है और विचारण न्यायालय ने उक्त विवाद्यक को विनिश्चित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि किराएदारी के पर्यवसान के लिए एक मास की सूचना पर्याप्त थी । यह अभिनिर्धारित किया गया कि किसी रजिस्ट्रीकृत पट्टा-विलेख के अभाव में यदि किराएदारी विनिर्माण प्रयोजन के लिए भी हो, तो भी किराएदारी के पर्यवसान के लिए 6 मास की सूचना आवश्यक नहीं थी । विचारण न्यायालय ने ऐसा निष्कर्ष निकालने के लिए उच्चतम न्यायालय द्वारा **समीर मुखर्जी** बनाम **दविन्दर बजाज**[1] और **श्री जानकी देवी भगत ट्रस्ट, आगरा** बनाम **राम स्वरूप जैन**[2] वाले मामलों में दिए गए निर्णयों का अवलंब लिया है । तद्नुसार यह अभिनिर्धारित किया गया कि वादी-प्रत्यर्थियों द्वारा दी गई 30 दिवसों की सूचना का परिणाम यह है कि किराएदारी का विधिमान्य रूप से पर्यवसान हो गया था । विचारण न्यायालय ने विवाद्यक सं. 4 को विनिश्चित करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि वादी ने किराया स्वीकार करके सूचना को परित्यक्त नहीं किया था और परिणामत: वाद डिक्री किया गया ।

5. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान् काउंसेल ने एकमात्र यह दलील दी है कि चूंकि पट्टा विनिर्माण प्रयोजन के लिए था इसलिए परिणामत: किराएदारी 6 मास की सूचना द्वारा पर्यवसित किए जाने योग्य थी जैसाकि सम्पत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (जिसे आगे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 106 के अधीन उपबंधित है । उन्होंने यह दलील दी कि धारा 107

---

[1] ए. आई. आर. 2001 एस. सी. 1696.

[2] ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 2482.

में किए गए उत्तर प्रदेश संशोधन को दृष्टिगत करते हुए उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय जिनका विचारण न्यायालय द्वारा अवलंब लिया गया है, लागू नहीं होते । उन्होंने यह दलील देते हुए किराया-करार कागज सं. 37घ का भी अवलंब लिया है कि किराएदारी वार्षिक किराएदारी थी इसलिए इसे केवल 6 मास की सूचना द्वारा ही पर्यवसित किया जा सकता है ।

6. इसके प्रतिकूल वादी-प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने विचारण न्यायालय के निर्णय का समर्थन करते हुए यह दलील दी है कि उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय जिनका अवलंब लिया गया है, पूर्ण रूप से लागू होते हैं ।

7. पक्षकारों के बीच करार तारीख 8 मार्च, 1984 का है । तद्द्वारा एक हाल और खाली पड़ी भूमि जिसमें सीमा दीवार है, पुनरीक्षणकर्ता को शीट मैटल का कारबार चलाने के लिए किराए पर दी गई थी । खंड 1 के अधीन यह कहा गया है कि किराएदारी एक वर्ष के लिए है जिसके दौरान ग्यारह सौ रुपए प्रतिमास किराया तय पाया था । करार के खंड 2 में यह उपबंध है कि यदि किराएदारी एक वर्ष के पश्चात् भी जारी रहती है तो किराया बाईस सौ रुपए प्रति मास होगा और तीसरे वर्ष के दौरान यह किराया 2,600/- रुपए प्रतिमास होगा । करार के खंड 12 में यह उपबंधित है कि किराएदारी का 3 मास की सूचना देकर पर्यवसान किया जा सकता है तथापि, एक वर्ष समाप्त होने के पूर्व नहीं ।

8. धारा 107 के अधीन जंगम संपत्ति का कोई पट्टा वर्ष-प्रतिवर्ष या एक वर्ष से अधिक से किसी अवधि के लिए, अथवा वार्षिक किराए को परिरक्षित करने वाला कोई पट्टा केवल किसी रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा ही किया जा सकता है । धारा 107 का दूसरा पैरा जो उत्तर प्रदेश राज्य में लागू है, यह उपबंधित करता है कि जंगम संपत्ति के अन्य सभी पट्टे या तो किसी रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा किए जा सकते हैं अथवा किसी मौखिक करार द्वारा या जिसमें कब्जे का परिदान सम्मिलित हो । धारा 106 यह उपबंध करती है कि किसी संविदा या स्थानीय विधि या प्रतिकूल रूढ़ि के अभाव में कृषि या विनिर्माण प्रयोजनों के लिए जंगम संपत्ति का कोई पट्टा पट्टाकर्ता या पट्टाधारक की ओर से 6 मास की सूचना द्वारा वर्ष-प्रतिवर्ष पर्यवसित होने वाला समझा जाएगा । उत्तर प्रदेश संशोधन के अधीन सूचना

की अवधि 30 दिवसों के लिए प्रति-स्थापित की गई है । बाद में 2003 के केन्द्रीय संशोधन अधिनियम 3 द्वारा पूर्वतर स्थिति को पुन:स्थापित कर दिया गया है तथापि, यह सुसंगत नहीं है क्योंकि सूचना को उक्त आधार पर आक्षेपित नहीं किया गया है ।

9. **समीर मुखर्जी** (पूर्वोक्त) जिसका निचले न्यायालय द्वारा अवलंब लिया गया है, वाले मामले में समान अभिवाक् पर विचार किया गया था । उक्त मामले में किराएदारी एक मौखिक करार द्वारा सृजित हुई थी । माननीय उच्चतम न्यायालय ने धारा 106 और 107 के बीच अंतर पर विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 106 निर्वचन का एक ऐसा नियम अधिकथित करती है जो तभी लागू किया जाएगा जब पक्षकार विनिर्दिष्ट रूप से इस बारे में सहमत न हों कि क्या पट्टा वार्षिक था या मासिक । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यदि किसी पट्टे की अवधि के संबंध में पक्षकारों के बीच एक विधिमान्य करार मौजूद है तब धारा 106 लागू नहीं होगी । इसके प्रतिकूल धारा 107 पट्टे के निष्पादन के लिए प्रक्रिया विहित करती है । अत: जहां पट्टा वर्ष-प्रतिवर्ष है अथवा एक वर्ष से अनधिक की अवधि के लिए है अथवा वार्षिक किराएदारी परिरक्षित है वहां ऐसा केवल किसी रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा ही किया जा सकता है न कि अन्यथा रीति में । उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि कोई रजिस्ट्रीकृत पट्टाकरार मौजूद नहीं है अपितु केवल एक मौखिक करार है इसलिए परिणामस्वरूप धारा 7 के प्रथम पैरा में उल्लिखित शर्तों को दृष्टिगत करते हुए वर्ष-प्रतिवर्ष वाला एक विधिमान्य पट्टा सृजित नहीं होता है और न ही धारा 106 में उल्लिखित निर्वचन का नियम लागू होता है । इस संबंध में उक्त निर्णय में सुसंगत संप्रेक्षण किया गया है जो इस प्रकार है :-

> "5. धारा 106 निर्वचन का ऐसा नियम अधिकथित करती है जो तभी लागू होगा जब पक्षकार इस बारे में विनिर्दिष्ट रूप से सहमत न हों कि क्या पक्षकारों के बीच पट्टा वार्षिक है या मासिक । इस धारा के परिशीलन मात्र से यह स्पष्ट होता है कि विधायिका ने अपने-अपने प्रयोजनों के अनुसार पट्टों को दो प्रवर्गों में वर्गीकृत किया है और यह धारा किसी संविदा या स्थानीय विधि या

प्रतिकूल रूढ़ि के अभाव में किसी विधिमान्य पट्टे के दौरान निर्वचन के लिए लागू होती है । जहां पक्षकारों ने किसी संविदा द्वारा किसी पट्टे की अवधि को उपदर्शित किया है, वहां यह धारा लागू नहीं होगी । इस धारा द्वारा जो विहित किया गया है, वह कृषि या विनिर्माण प्रयोजनों के लिए विधिक काल्पनिक-पट्टों की भिन्न किस्मों की अवधि के दौरान वर्ष-प्रतिवर्ष पट्टा किया जाना समझा जाएगा और अन्य सभी पट्टे मास-प्रतिमास समझे जाएंगे । संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 में उल्लिखित निर्वचन के नियम का अवलंब लेने के लिए विधिमान्य पट्टे की विद्यमानता पूर्वापेक्षित है ।

6. धारा 107 पक्षकारों के बीच किसी पट्टे के निष्पादन के लिए प्रक्रिया विहित करती है । इस धारा के प्रथम पैरा के अधीन जंगम संपत्ति का कोई पट्टा जो वर्ष-प्रतिवर्ष आधार पर हो या एक वर्ष से अधिक किसी अवधि के लिए हो या वार्षिक किराया परिरक्षित करने वाला हो, केवल रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा किया जा सकता है और पट्टों के शेष वर्ग द्वितीय पैरा द्वारा विनियमित होते हैं अर्थात् जंगम संपत्ति के सभी पट्टे या तो रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा किए जा सकते हैं या कब्जे के परिदान के साथ मौखिक करार द्वारा ।

7. वर्तमान मामले में हम एक मौखिक पट्टे पर विचार कर रहे हैं जिस पर संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 का प्रथम पैरा लागू होता है । धारा 107 के अधीन पक्षकार इस बात के लिए स्वतंत्र हैं कि वे किसी जंगम संपत्ति के संबंध में कोई पट्टा या तो एक वर्ष से कम अवधि के लिए अथवा वर्ष-प्रतिवर्ष अथवा एक वर्ष से अधिक की किसी अवधि के लिए करें अथवा किराए के परिरक्षण द्वारा निष्पादित करें । यदि वे किसी जंगम संपत्ति के संबंध में कोई पट्टा वर्ष-प्रतिवर्ष करने अथवा एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए करने अथवा वार्षिक किराया परिरक्षण के आधार पर करने का विनिश्चय करते हैं तो ऐसा कोई पट्टा किसी रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा ही किया जाना चाहिए । किसी रजिस्ट्रीकृत लिखत के अभाव

में वर्ष-प्रतिवर्ष अथवा एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए अथवा वार्षिक किराया परिरक्षित करते हुए किया जाता है तो कोई विधिमान्य पट्टा सृजित नहीं हो सकता । यदि पट्टा धारा 106 में उल्लिखित निर्वचन के नियम के उपबंध के अर्थान्तर्गत एक विधिमान्य पट्टा नहीं है तो यह धारा लागू नहीं होगी । दोनों धाराओं को साथ-साथ पढ़ने से उपर्युक्त विधिक स्थिति स्पष्ट होती है ।

10. वर्तमान मामले में यद्यपि अपीलार्थी ने यह दावा किया है कि उसका पट्टा विनिर्माण प्रयोजन के लिए एक पट्टा था तथापि, यह स्वीकृतत: कोई रजिस्ट्रीकृत लिखित पट्टा नहीं था इसलिए धारा 106 में यथा परिकल्पित निर्वचन का नियम लागू नहीं होगा क्योंकि अधिनियम की धारा 107 की कानूनी अपेक्षा पूरी नहीं हुई है । अपीलार्थी की यह दलील कि वर्तमान किराएदारी को पर्यवसित करने वाली 15 दिन की सूचना विधि के अनुसार नहीं है, स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है ।"

उच्चतम न्यायालय के चार न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **राम कुमार** बनाम **जगदीश चन्द्र देव, धवल देव और एक अन्य**[1] वाले मामले के निर्णय में इस प्रकार मत व्यक्त किया है :-

"**राम कुमार दास** (पूर्वोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के चार न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा धारा 106 पर विचार किया गया था । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि धारा 106 निर्वचन के ऐसे नियम को अधिकथित करती है जो तभी लागू होगा जब पक्षकारों के बीच अवधि के संबंध में कोई करार न हो और ऐसे मामलों में अवधि उस प्रयोजन के जिसके लिए किराएदारी सृजित की गई है, उद्देश्य के निर्देश में अवधारित की जानी चाहिए । यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि इस धारा में उल्लिखित निर्वचन का नियम न केवल अनिश्चित अवधि के अभिव्यक्त पट्टों के लिए लागू होगा अपितु विधि द्वारा विवक्षित उन पट्टों को भी लागू

---

[1] ए. आई. आर. 1952 एस. सी. 23 = [1952] 1 एस. सी. आर. 269.

होगा जिनमें कब्जे का निष्कर्ष और किराए की स्वीकृति और अन्य परिस्थितियों का निष्कर्ष निकाला जा सकता हो । यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि यह विवादित नहीं है कि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 द्वारा यथा अनुध्यात प्रतिकूल संविदा के मामले में किसी अभिव्यक्त संविदा की आवश्यकता नहीं है ; यह विवक्षित हो सकती है तथापि, यह निश्चित रूप से एक विधिमान्य संविदा होनी चाहिए । इस मामले के तथ्यों के आधार पर इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि वर्तमान मामले में नियम को लागू करने में कठिनाई इस तथ्य से उत्पन्न होती है कि किराएदारी वर्ष-प्रतिवर्ष है या वार्षिक किराया परिरक्षण के आधार पर है इसलिए इसे रजिस्ट्रीकृत लिखत के मामले में ही लागू किया जा सकता है जैसाकि संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 में अधिकथित किया गया है ।"

10. माननीय उच्चतम न्यायालय ने अपने इस निर्णय में भी **श्री जानकी देवी भगत ट्रस्ट, आगरा** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का अनुमोदन करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि वर्ष-प्रतिवर्ष आधार पर या एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए जंगम संपत्ति का कोई पट्टा किसी रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा ही किया जा सकता है । **श्री जानकी देवी भगत ट्रस्ट** (पूर्वोक्त) वाले मामले के तथ्य वर्तमान मामले के तथ्यों के समान ही हैं । उस मामले में एक पट्टा करार अस्तित्व-युक्त था यद्यपि अरजिस्ट्रीकृत था, जिसके अधीन 75 रुपए प्रति मास की दर से मासिक किराया संदेय था । किराएदारी 30 दिवसों की सूचना द्वारा पर्यवसित की गई थी । प्रतिवादियों ने यह अभिवाक् किया था कि चूंकि पट्टा विनिर्माण के प्रयोजन के लिए किया गया था और इसके परिणामस्वरूप पट्टा पर्यवसित करने के लिए 6 मास की सूचना आवश्यक थी । उच्च न्यायालय ने प्रतिवादी की दलील को स्वीकार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि पट्टा अरजिस्ट्रीकृत था तथापि, चूंकि यह एक वर्ष से अनधिक की अवधि के लिए था इसलिए इसका धारा 107 के प्रथम भाग के अधीन अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरण कराना आवश्यक नहीं था । यह भी अभिनिर्धारित किया गया था चूंकि पट्टा विनिर्माण प्रयोजन के लिए था

इसलिए किराएदारी पर्यवसित करने के लिए 6 मास की सूचना आवश्यक थी । उच्चतम न्यायालय द्वारा इस प्रकार अभिनिर्धारित करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा दिए तर्कों का अनुमोदन किया गया था :-

"4. संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 के अधीन वर्ष-प्रतिवर्ष के लिए या एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए जंगम संपत्ति का कोई पट्टा केवल रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा ही किया जा सकता है । इस प्रकार का कोई पट्टा शून्य होगा जब तक कि यह किसी रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा सृजित न किया गया हो । जंगम संपत्ति के अन्य सभी पट्टे या तो रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा किए जा सकते हैं अथवा ऐसे किसी मौखिक करार द्वारा जिसमें कब्जे का परिदान किया गया हो । सभी निचले न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि एक विधिमान्य पट्टा विद्यमान था । उच्च न्यायालय ने भी यह अभिलिखित किया है कि प्रत्यर्थी द्वारा यह दलील दी गई है कि उसका पट्टा वर्ष-प्रतिवर्ष के आधार पर था । यह दलील दी गई थी कि चूंकि पट्टा एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए था इसलिए संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 के अधीन प्रथम भाग के अनुसार रजिस्ट्रीकृत कराना अनिवार्य था । इस दलील को उच्च न्यायालय द्वारा तथा दोनों निचले न्यायालयों द्वारा नकार दिया गया था । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि पट्टा एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए नहीं था, इसलिए इसका धारा 107 के प्रथम भाग के अधीन रजिस्ट्रीकरण कराया जाना आवश्यक नहीं था । तथापि, यह अभिनिर्धारित किया गया कि चूंकि पट्टा विनिर्माण के प्रयोजन के लिए किया गया था इसलिए धारा 106 के अधीन 6 मास की सूचना दी जानी आवश्यक थी । इसके अभाव में पट्टे का पर्यवसान विधिमान्य नहीं था ।

5. यह तर्क भ्रमपूर्ण हैं । यह सही है कि प्रदर्श-12 पर जो रजिस्ट्रीकृत नहीं है, विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि यह रजिस्ट्रीकृत नहीं है । तथापि, पट्टे का तथ्य विवादित नहीं है । सभी न्यायालयों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि यह पट्टा मास-

प्रतिमास के आधार पर था और इसकी अवधि एक बार में एक वर्ष से अधिक नहीं थी । इस निष्कर्ष को दृष्टिगत करते हुए संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 106 के प्रथम भाग के उपधारित उपबंध को वर्तमान मामले में लागू नहीं किया जा सकता ।"

11. जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है, वर्तमान मामले में पट्टा-विलेख ऐसे किराए के लिए परिरक्षित था जो मासिक आधार पर संदेय था । यद्यपि पट्टा-विलेख में यह उपबंध किया गया था कि पट्टाधारी प्रथम वर्ष की अवधि में बेदखल नहीं किया जा सकता तथापि, यह उपबंध किया गया था कि यदि पट्टा एक वर्ष से अधिक की अवधि तक जारी रहता है तो द्वितीय वर्ष में परिसर का किराया 2,200/- रुपए और तृतीय वर्ष में 2,600/- रुपए होगा । करार के सभी खंडों के संयुक्त परिशीलन से यह प्रकट होता है कि यह पट्टा एक वर्ष से अधिक की अवधि के लिए किया गया था । चूंकि यह एक अरजिस्ट्रीकृत पट्टा था इसलिए इसमें अधिकथित निबंधन और शर्तें प्रवर्तनीय नहीं हैं और न ही रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 के साथ पठित संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 107 को दृष्टिगत करते हुए पक्षकारों पर आबद्धकर हैं । इसके प्रतिकूल यदि पट्टा ऐसे पट्टे के रूप में समझा जाए जो एक वर्ष से अनधिक की अवधि के लिए है और मासिक आधार पर किराया परिरक्षित किया गया है तो इसे 30 दिवसों की सूचना द्वारा विधिमान्य रूप से पर्यवसित किया जा सकता है जैसाकि उच्चतम न्यायालय द्वारा **श्री जानकी देवी भगत ट्रस्ट, आगरा** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है । धारा 107 के लिए उत्तर प्रदेश संशोधन जो यह परिकल्पित करता है कि पट्टे धारा 107 के प्रथम पैरा के अन्तर्गत नहीं आते हैं, या तो किसी रजिस्ट्रीकृत लिखत द्वारा किए जा सकते हैं अथवा किसी मौखिक लिखत द्वारा अथवा कब्जे के परिदान द्वारा और इसका विधिक स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । ऐसी दशा में निश्चित रूप से पट्टे की अवधि मास-प्रतिमास आधार पर होगी । अत: पट्टा इस तथ्य के होते हुए भी एक मास की सूचना द्वारा पर्यवसित होगा कि परिसर विनिर्माण प्रयोजन के लिए किराए पर दिया गया था ।

12. पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान् काउंसेल द्वारा अन्य कोई दलील नहीं दी गई है । चूंकि पुनरीक्षण में कोई बल नहीं है अत: इसे खारिज किया जाता है ।

13. इस प्रक्रम पर पुनरीक्षणकर्ता के विद्वान् काउंसेल ने पट्टा कृत परिसर को खाली करने के लिए पुनरीक्षणकर्ता को कुछ समय मंजूर करने के लिए अनुरोध किया है जिसके लिए वादी-प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने कोई आपत्ति नहीं की है ।

14. तद्नुसार पुनरीक्षणकर्ता को लघु वाद न्यायालय के समक्ष यह वचनबंध दाखिल करने के अध्यधीन आज से 4 मास की अवधि के लिए पट्टाकृत परिसर को अपने कब्जे में रखने के लिए अनुज्ञात किया जाता है कि वह इस अवधि के पर्यवसान पर या उसके पूर्व पट्टाकृत परिसर को खाली करेगा । पुनरीक्षणकर्ता आज से 3 सप्ताह के भीतर डिक्रीत धनराशि की संपूर्ण बकाया और अंत: लाभ तथा अगले 4 मास के लिए किराया/नुकसानी का संदाय करेगा । उपर्युक्त शर्तों में से किसी शर्त के प्रति चूक होने की दशा में इस न्यायालय द्वारा दिया गया संरक्षण स्वत: निरस्त समझा जाएगा और वादी-प्रत्यर्थी डिक्री का निष्पादन कराने के लिए स्वतंत्र होंगे ।

पुनरीक्षण आवेदन खारिज किया गया ।

महे.

(2019) 1 सि. नि. प. 461 केरल

मोहम्मद शफ़ी

बनाम

जसना और अन्य

तारीख 16 मार्च, 2018

न्यायमूर्ति वी. चिदंबरेश और न्यायमूर्ति जितेन्द्र नाथ

कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66) – धारा 7(1)(घ) [सपठित डी. एफ़ मुल्ला कृत मोहम्मडन ला की धारा 255] – मुस्लिम पति द्वारा अपनी पत्नी को तलाक़ – पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध विभिन्न दांडिक मामले संस्थित किया जाना – पत्नी द्वारा फाइल दांडिक मामलों के अंतिम निपटान तक पति के विरुद्ध उसे पुन: विवाह करने से रोकने के लिए आवेदन – मंजूरी – विधिमान्यता – चूंकि मुस्लिम स्वीय विधि किसी मुस्लिम को एक से अधिक पत्नियों से विवाह करने के लिए अनुज्ञात करती है – अत: कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम की धारा 7(1)(घ) के अधीन प्रदत्त शक्ति का किसी मुस्लिम पति को पुन: विवाह करने से रोकने के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता ।

आवेदक का प्रथम प्रत्यर्थी के साथ विवाह तारीख 9 नवंबर, 2006 को मुस्लिम धर्म रीतियों के अनुसार हुआ था और उनके इस विवाह बंधन से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसकी आयु इस समय साढ़े आठ वर्ष है । इसके पश्चात् वैवाहिक कलह आरंभ हुआ और आवेदक ने प्रथम प्रत्यर्थी को तलाक का उच्चारण करके विवाह विच्छिन्न कर दिया । तलाक तीन विभिन्न तारीखों पर अर्थात् तारीख 25 मार्च, 2017, तारीख 3 मई, 2017 और तारीख 7 अक्तूबर, 2017 को दिया गया था और यह बात संसूचनाओं से साबित है । प्रथम प्रत्यर्थी को स्थानीय जमात के द्वारा जिन्हें संसूचनाएं भेजी गई थीं, तलाक के बारे में सम्यक्तत: सूचित किया गया था । इससे पक्षकारों के बीच कुटुंब न्यायालय की फाइल पर विभिन्न मुकदमे आरंभ हुए हैं जो अभी भी निपटान के लिए लंबित हैं । 2017 के मूल आवेदन सं. 1524 में मांगा गया मुख्य

अनुतोष आवेदक को सभी मामलों का निपटान किए जाने तक दूसरा विवाह करने से निषिद्ध करने के लिए व्यादेश की डिक्री है । प्रथम प्रत्यर्थी ने पुन: विवाह करने की अनुमति मंजूर करने से जमात को रोकने के लिए भी व्यादेश की ईप्सा की है । आवेदक ने यह कहते हुए व्यादेश के एकपक्षीय आदेश को आक्षेपित किया है कि उसकी स्वीय विधि उसे एक समय में चार पत्नियों से विवाह करने के लिए अनुज्ञात करती है । अत: उसे दूसरा विवाह करने से निषिद्ध नहीं किया जा सकता भले ही दिया गया तलाक विधिमान्य हो या न हो । आवेदक ने यह प्रकथन किया है कि स्वीय विधि के विरुद्ध व्यादेश का ऐसा कोई आदेश पारित नहीं किया जाना चाहिए । प्रथम प्रत्यर्थी ने यह दलील दी है कि निचले न्यायालय को एकपक्षीय व्यादेश का ऐसा आदेश पारित करने के लिए शक्तियां प्राप्त हैं । इस प्रयोजन के लिए कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 (जिसे आगे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 7(1)(घ) का अवलंब लिया गया है । प्रथम प्रत्यर्थी का यह पक्षकथन है कि आवेदक व्यादेश के आदेश के उपांतरण के लिए निचले न्यायालय में समावेदन कर सकता है । निचले न्यायालय द्वारा आवेदन मंजूर किया गया था । अत: आवेदक द्वारा निचले न्यायालय के आदेश को आक्षेपित करते हुए वर्तमान आवेदन फाइल किया गया । आवेदन मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – पूर्वतर विवाहों की विद्यमानता के दौरान चार पत्नियों की सीमा से अधिक किसी पत्नी से विवाह करना स्वीय विधि के अधीन अनुज्ञेय है । यहां तक कि जहां किसी मुस्लिम की पहले से चार पत्नियां मौजूद हों वहां पांचवीं पत्नी से विवाह शून्य न होकर अनियमित होता है । कोई अनियमित (फासिद) विवाह धारा 267 के अनुसार विवाह के पूर्व या पश्चात् किसी पक्षकार द्वारा पर्यवसित किया जा सकता है । कुरान में एकमात्र यह शर्त उपबंधित है कि पति ईश्वर में विश्वास रखते हुए सभी चारों पत्नियों के साथ समान व्यवहार करेगा । आवेदक ने केवल प्रथम प्रत्यर्थी के साथ एक विवाह किया है जो अभिकथित रूप से तलाक द्वारा विघटित कर दिया गया था । यह बात कि तलाक विधिमान्य है या नहीं, आवेदक को दूसरी महिला से विवाह करने के लिए उसके अधिकार को

प्रभावित नहीं करेगी । 2017 के अंतरिम आवेदन सं. 2617 में पारित व्यादेश का आदेश पक्षकारों की स्वीय विधि की पूर्ण उपेक्षा करके पारित किया गया है । यह सही है कि निचले न्यायालय को अधिनियम की धारा 7(1)(घ) वैवाहिक संबंधों से उद्भूत परिस्थितियों में कोई आदेश या व्यादेश पारित करने की अधिकारिता प्रदत्त करती है । तथापि, ऐसी शक्ति का वहां किसी पक्षकार को पुन: विवाह करने से रोकने के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता जहां स्वीय विधि स्पष्ट रूप से अनुज्ञात करती हो । संभवत: रोक का ऐसा आदेश ऐसे मामलों में संभव है जहां कोई पति एक समय में एक से अधिक पत्नियां न रख सकता हो । तथापि, वर्तमान मामले में स्थिति यह है कि आवेदक की स्वीय विधि उसे एक समय में एक से अधिक पत्नी रखने के लिए अनुज्ञात करती है । निचले न्यायालय ने विवाद को निपटाने के लिए आवेदक को मजबूर करने के लिए अधिनियम की धारा 7(1)(घ) के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग किया है । न्यायालय सामान्यतया व्यादेश के ऐसे एकपक्षीय आदेश में हस्तक्षेप नहीं करता जहां पक्षकारों को भिन्न उपचार उपलब्ध है । तथापि, न्यायालय यह महसूस करता है कि निचले न्यायालय ने पक्षकारों को विनियमित करने वाली स्वीय विधि की अवैध रूप से उपेक्षा करते हुए अपनी अधिकारिता का प्रयोग किया है । इन परिस्थितियों में न्यायालय 2017 के मूल आवेदन सं. 1524 में दिए गए 2017 के अंतरिम आवेदन सं. 2617 में आक्षेपित आदेश को अपास्त करता है । निचले न्यायालय को यह निदेश दिया जाता है कि वह 2017 के मूल आवेदन सं. 1524 और 2017 के अंतरिम आवेदन सं. 2617 का शीघ्रातिशीघ्र गुण-दोष के आधार पर निपटान करे । (पैरा 7 और 8)

प्रभेदित निर्णय

पैरा

[1988] ए. आई. आर. 1988 कलकत्ता 98 :
चित्रा सेन गुप्ता बनाम **ध्रुव ज्योति सेन गुप्ता** । 8

सिविल (पुनरीक्षणीय) अधिकारिता : 2018 की ओ. पी. (एफ. सी.) सं. 81.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन ।

आवेदक की ओर से	श्री टी. एच. अब्दुल अजीज
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री लतीश सेबसटियन और सी. पी. मोहम्मद न्याज

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति वी. चिदंबरेश ने दिया ।

न्या. चिदंबरेश – कुरान के अध्याय 4 आयत 3 में इस प्रकार कहा गया है :–

> "यदि आपको यह आशंका है कि आप अनाथों के साथ सही व्यवहार नहीं करते और तब ऐसी स्त्री से विवाह करें जो आपको बेहतर प्रतीत होती है : चाहे वह 2 हों, या 3 हों, या 4 हों ।
>
> यदि आपको यह आशंका है कि आप उनके साथ उचित व्यवहार करने के काबिल नहीं हैं तो केवल एक (1) से विवाह करें अथवा उनके बीच से विवाह करें जो आपके अत्यंत करीब हैं । इस बात से इसकी अधिक संभावना होगी कि आप अन्याय करने से बचेंगे ।"

2. आवेदक का प्रथम प्रत्यर्थी के साथ विवाह तारीख 9 नवंबर, 2006 को मुस्लिम धर्म रीतियों के अनुसार हुआ था और उनके इस विवाह बंधन से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसकी आयु इस समय साढ़े आठ वर्ष है । इसके पश्चात् वैवाहिक कलह आरंभ हुआ और आवेदक ने प्रथम प्रत्यर्थी को तलाक का उच्चारण करके विवाह विच्छिन्न कर दिया । तलाक तीन विभिन्न तारीखों पर अर्थात् तारीख 25 मार्च, 2017, तारीख 3 मई, 2017 और तारीख 7 अक्तूबर, 2017 को दिया गया था और यह बात संसूचनाओं से साबित है । प्रथम प्रत्यर्थी को स्थानीय जमात के द्वारा जिन्हें संसूचनाएं भेजी गई थीं, तलाक के बारे में सम्यक्तत: सूचित किया गया था । इससे पक्षकारों के बीच कुटुंब न्यायालय की फाइल पर विभिन्न मुकदमे आरंभ हुए हैं जो अभी भी निपटान के लिए लंबित हैं ।

3. कुटुंब न्यायालय की फाइल पर लंबित मामलों का ब्यौरा इस प्रकार है :–

(i) प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा भरणपोषण के लिए फाइल किया गया 2016 का भरणपोषण मामला सं. 74 ;

(ii) प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा विवाह के विघटन के लिए फाइल किया गया 2016 का ओ. पी. सं. 261 ;

(iii) प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा विक्रय विलेख को अपास्त करने के लिए फाइल किया गया 2016 का ओ. पी. सं. 894 ;

(iv) प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा धन की वसूली के लिए फाइल किया गया 2017 का ओ. पी. सं. 152 ;

(v) आवेदक द्वारा बच्चे की अभिरक्षा के लिए फाइल किया गया 2017 का ओ. पी. सं. 153 ;

(vi) आवेदक द्वारा इस घोषणा के लिए कि तलाक विधिमान्य है, फाइल किया गया 2018 का ओ. पी. सं. 141 ;

(vii) प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा विवाह के विरुद्ध व्यादेश के लिए फाइल किया गया 2017 का ओ. पी. सं. 1524 ;

4. 2017 के मूल आवेदन सं. 1524 में मांगा गया मुख्य अनुतोष आवेदक को सभी मामलों का निपटान किए जाने तक दूसरा विवाह करने से निषिद्ध करने के लिए व्यादेश की डिक्री है । प्रथम प्रत्यर्थी ने पुन: विवाह करने की अनुमति मंजूर करने से जमात को रोकने के लिए भी व्यादेश की ईप्सा की है । 2017 के मूल आवेदन सं. 1524 के साथ व्यादेश के अंतरिम आदेश के लिए 2017 का अंतरिम आवेदन सं. 2617 भी संलग्न किया गया है जिसमें निचले न्यायालय ने तारीख 13 दिसंबर, 2017 को निम्नलिखित एकपक्षीय आदेश पारित किया है :-

"आवेदक के काउंसेल को सुना गया । पेश किए गए शपथपत्र और दस्तावेजों का परिशीलन किया गया । मेरा यह समाधान हो गया है कि आवेदक का प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है और यदि व्यादेश मंजूर नहीं किया जाता है तो उसको अपूर्णनीय क्षति कारित होगी । विलंब व्यादेश के प्रयोजन को विफल करेगा । अत: सूचना

से निर्मुक्त किया जाता है ।

अत: प्रत्यर्थी को इस आदेश द्वारा उस समय तक किसी अन्य स्त्री से पुन: विवाह करने से एतद्द्वारा रोका जाता है जब तक कि आवेदक के धनीय दावे विनिश्चित न हो जाएं और तृतीय प्रत्यर्थी को अगले आदेशों तक प्रथम प्रत्यर्थी को दूसरा विवाह करने से अनुमति प्रदान करने से रोका जाता है ।

आवेदक सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 39, नियम 3 का अनुपालन करेगा ।"

5. आवेदक ने यह कहते हुए व्यादेश के एकपक्षीय आदेश को आक्षेपित किया है कि उसकी स्वीय विधि उसे एक समय में चार पत्नियों से विवाह करने के लिए अनुज्ञात करती है । अत: उसे दूसरा विवाह करने से निषिद्ध नहीं किया जा सकता भले ही दिया गया तलाक विधिमान्य हो या न हो । आवेदक ने यह प्रकथन किया है कि स्वीय विधि के विरुद्ध व्यादेश का ऐसा कोई आदेश पारित नहीं किया जाना चाहिए । प्रथम प्रत्यर्थी ने यह दलील दी है कि निचले न्यायालय को एकपक्षीय व्यादेश का ऐसा आदेश पारित करने के लिए शक्तियां प्राप्त हैं । इस प्रयोजन के लिए कुटुंब न्यायालय अधिनियम, 1984 (जिसे आगे संक्षेप में 'अधिनियम' कहा गया है) की धारा 7(1)(घ) का अवलंब लिया गया है । प्रथम प्रत्यर्थी का यह पक्षकथन है कि आवेदक व्यादेश के आदेश के उपांतरण के लिए निचले न्यायालय में समावेदन कर सकता है ।

6. आवेदक के विद्वान् अधिवक्ता श्री टी. एच. अब्दुल अजीज, प्रथम प्रत्यर्थी के अधिवक्ता श्री लतीश सेबसटियन और मामले में न्यायमित्र के रूप में श्री सी. पी. मोहम्मद न्याज अधिवक्ता को सुना गया ।

7. मोहम्मडन ला (जिसके सिद्धांतों को सर दिनशा फरदून जी मुल्ला द्वारा संहिताबद्ध किया गया है) की धारा 255 इस प्रकार है :-

"255. **पत्नियों की संख्या** - कोई मुस्लिम एक समय में चार पत्नियां रख सकता है न कि इससे अधिक । यदि वह पांचवीं पत्नी

से विवाह करता है, जबकि उसकी चार पत्नियां पहले से ही मौजूद हैं, तो ऐसा विवाह शून्य न होकर मात्र अनियमित होगा ।"

अत: पूर्वतर विवाहों की विद्यमानता के दौरान चार पत्नियों की सीमा से अधिक किसी पत्नी से विवाह करना स्वीय विधि के अधीन अनुज्ञेय है । यहां तक कि जहां किसी मुस्लिम की पहले से चार पत्नियां मौजूद हों वहां पांचवीं पत्नी से विवाह शून्य न होकर अनियमित होता है । कोई अनियमित (फासिद) विवाह धारा 267 के अनुसार विवाह के पूर्व या पश्चात् किसी पक्षकार द्वारा पर्यवसित किया जा सकता है । कुरान में एकमात्र यह शर्त उपबंधित है कि पति ईश्वर में विश्वास रखते हुए सभी चारों पत्नियों के साथ समान व्यवहार करेगा । आवेदक ने केवल प्रथम प्रत्यर्थी के साथ एक विवाह किया है जो अभिकथित रूप से तलाक द्वारा विघटित कर दिया गया था । यह बात कि तलाक विधिमान्य है या नहीं, आवेदक को दूसरी महिला से विवाह करने के लिए उसके अधिकार को प्रभावित नहीं करेगी । 2017 के अंतरिम आवेदन सं. 2617 में पारित व्यादेश का आदेश पक्षकारों की स्वीय विधि की पूर्ण उपेक्षा करके पारित किया गया है ।

8. यह सही है कि निचले न्यायालय को अधिनियम की धारा 7(1)(घ) वैवाहिक संबंधों से उद्भूत परिस्थितियों में कोई आदेश या व्यादेश पारित करने की अधिकारिता प्रदत्त करती है । तथापि, ऐसी शक्ति का वहां किसी पक्षकार को पुन: विवाह करने से रोकने के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता जहां स्वीय विधि स्पष्ट रूप से अनुज्ञात करती हो । संभवत: रोक का ऐसा आदेश ऐसे मामलों में संभव है जहां कोई पति एक समय में एक से अधिक पत्नियां न रख सकता हो । **चित्रा सेन गुप्ता** बनाम **ध्रुव ज्योति सेन गुप्ता**[1] वाला मामला एक ऐसा मामला है जहां पक्षकार हिन्दू थे । व्यादेश का कोई आदेश निचले न्यायालय द्वारा मंजूर की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री के विरुद्ध किसी अपील में पुन: विवाह करने से रोकने के लिए मंजूर किया जा सकता है । पक्षकारों को विधिक विवाद या जटिलताओं को, जो आ सकती हैं, रोकने के लिए यथास्थिति बनाए रखने

---

[1] ए. आई. आर. 1988 कलकत्ता 98.

का निदेश दिया जा सकता है । तथापि, वर्तमान मामले में स्थिति यह है कि आवेदक की स्वीय विधि उसे एक समय में एक से अधिक पत्नी रखने के लिए अनुज्ञात करती है । निचले न्यायालय ने विवाद को निपटाने के लिए आवेदक को मजबूर करने के लिए अधिनियम की धारा 7(1)(घ) के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग किया है । हम सामान्यतया व्यादेश के ऐसे एकपक्षीय आदेश में हस्तक्षेप नहीं करते जहां पक्षकारों को भिन्न उपचार उपलब्ध है । तथापि, हम यह महसूस करते हैं कि निचले न्यायालय ने पक्षकारों को विनियमित करने वाली स्वीय विधि की अवैध रूप से उपेक्षा करते हुए अपनी अधिकारिता का प्रयोग किया है । इन परिस्थितियों में हम 2017 के मूल आवेदन सं. 1524 में फाइल किए गए 2017 के अंतरिम आवेदन सं. 2617 में पारित आक्षेपित आदेश को अपास्त करते हैं । निचले न्यायालय को यह निदेश दिया जाता है कि वह 2017 के मूल आवेदन सं. 1524 और 2017 के अंतरिम आवेदन सं. 2617 का शीघ्रातिशीघ्र गुण-दोष के आधार पर निपटान करे ।

9. न्यायमित्र के रूप में श्री सी. पी. मोहम्मद न्याज द्वारा उपदर्शित विशेषतया मुस्लिम विधि में विधिक समझदारी सराहनीय है ।

10. मूल आवेदन मंजूर किया जाता है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

आवेदन मंजूर किया गया ।

मह.

गुरविन्दर सिंह चड्ढा

बनाम

छत्तीसगढ़ राज्य और अन्य

तारीख 20 फरवरी, 2018

न्यायमूर्ति संजय के. अग्रवाल

संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) – धारा 105 [संविधान, 1950 का अनुच्छेद 14 और 226] – पट्टे का रद्दकरण – टैंक के परिरक्षण और सड़क विस्तार के आधार पर पट्टे का समय-पूर्व रद्दकरण – कारण बताओ सूचना में पट्टा रद्दकरण के आधारों और कारणों का उल्लेख न होना – पट्टा रद्द करने से पूर्व पट्टाधारियों को सुनवाई का अवसर न दिया जाना – राज्य सरकार द्वारा पट्टे के रद्दकरण के लिए किसी सामग्री का प्रदाय न किया जाना – पट्टे का रद्दकरण नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्तों के अतिक्रमण में माना जाएगा – अत: ऐसा आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है – तथापि, सरकार नियमों के अनुसरण में कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र है ।

चूंकि इन रिट याचिकाओं में विधि और तथ्य का सामान्य प्रश्न अन्तर्वलित है इसलिए इन्हें साथ-साथ सुना जा रहा है और इनका इस सामान्य आदेश द्वारा निपटान किया जा रहा है । रिट याचिकाओं का ये समूह तारीख 5 दिसंबर, 2014 के उस सामान्य आदेश के विरुद्ध फाइल किया गया है जिसके द्वारा याचियों के हक में मंजूर किया गया भूमि का पट्टा राज्य सरकार द्वारा इस निष्कर्ष के साथ रद्द किया गया है कि प्रश्नगत भूमि की टैंक के परिरक्षण और सौन्दर्यकरण के लिए और राष्ट्रीय राजमार्ग को विस्तारित करने के लिए आवश्यकता है । याची ने प्रत्यर्थियों की कार्रवाई को इस रिट याचिका द्वारा आक्षेपित किया है । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – तथापि, मुख्य विवाद्यक ऐसी कार्रवाई करने की अपेक्षा

से संबंधित है जो की जानी प्रस्तावित है । कारण बताओ सूचना की तामील करने के पीछे मूल प्रयोजन सूचना प्राप्त करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध विरचित मामले को जो उसके विरुद्ध पेश किया गया है, ठीक-ठीक समझने के लिए सूचना जारी करना है । इसके द्वारा यह अपेक्षित है कि उसके द्वारा किए गए अभिकथित भंग और व्यतिक्रम को विस्तृत कथन द्वारा बताया जाए जिससे कि उसे इसके खंडन के लिए अवसर प्राप्त हो सके । न्यायालय के मतानुसार दूसरी अपेक्षा कार्रवाई की प्रकृति है जो ऐसे किसी भंग के लिए प्रस्तावित की जानी है । ऐसा इसलिए भी होना चाहिए जिससे कि सूचना प्राप्तकर्ता यह उपदर्शित करने के लिए समर्थ हो सके कि संबंधित मामले में प्रस्तावित कार्रवाई की आवश्यकता नहीं है भले ही शिकायत किए गए व्यतिक्रम/भंगों को संतोषजनक रूप से स्पष्ट न किया गया हो । जहां तक उसे काली सूची में डालने की बात है, ऐसी अपेक्षा इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए अधिक प्रभावी बन जाती है कि यह परेशानी को बढ़ाने वाली कार्रवाई है । उच्च न्यायालय ने मात्र यह कहा है कि कारण बताओ सूचना का प्रयोजन सूचना प्राप्तकर्ता को प्राथमिक रूप से उन आधारों को उपलब्ध कराना है जिनके आधार पर उसके विरुद्ध कार्रवाई प्रस्तावित है । निस्संदेह, उच्च न्यायालय इस सीमा तक न्यायोचित है । तथापि, समान रूप से इस बारे में उल्लेख करना भी आवश्यक है कि यदि सूचना प्राप्तकर्ता उन आधारों को संतोषजनक रूप से तुष्ट नहीं करता जिन पर ऐसी कार्रवाई प्रस्तावित है तो उसके क्या परिणाम होंगे । याचियों को जारी की गई अभिकथित कारण बताओ सूचना में राजस्व अधिकारी का नाम, विशेष मामला संख्या, पक्षकारों के नाम और सुनवाई की तारीख का उल्लेख किया गया है तथापि, उन आधारों का उल्लेख नहीं है जिनके आधार पर पट्टा रद्द किए जाने की आवश्यकता है । अत: याचियों को सूचना का प्रतिवाद करने/जवाब देने का कोई अवसर नहीं दिया गया है जिनके आधार पर राज्य ने याचियों के पट्टे के पर्यवसान के लिए प्रस्ताव किया है । अन्यथा भी, पट्टे के रद्दकरण के सिविल परिणाम होते हैं और इसलिए याचियों को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देकर कार्यवाही की जानी

चाहिए, तथापि, ऐसा नहीं किया गया है । निष्कर्ष स्वरूप पट्टे का रद्दकरण साक्ष्य से समर्थित सम्यक्ततः कार्यवाही आरंभ किए बिना और अन्य पक्षकारों को साक्ष्य पेश करने/खंडन करने के लिए अवसर दिए बिना किया गया है । राज्य सरकार द्वारा पट्टा रद्द करने के लिए अवलंब ली गई सामग्री का भी याचियों को प्रदाय नहीं किया गया है और इसलिए इसका परिणाम यह है कि आदेश पारित करने में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का भंग किया गया है । अतः तारीख 5 दिसंबर, 2014 का आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है और इसलिए इसे अभिखंडित किया जाता है । प्रत्यर्थी/राज्य सरकार विधि के अनुसरण में कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र है । यदि नए सिरे से कार्यवाहियां आरंभ की जाती हैं तब दस्तावेज/सामग्री द्वारा समर्थित सम्यक्ततः विरचित कारण बताओ सूचना याचियों को जवाब फाइल करने के लिए युक्तियुक्त समय देते हुए जारी की जाएगी और पक्षकार साक्ष्य पेश करने और अपने-अपने पक्षकथनों के समर्थन में सामग्री पेश करने के हकदार होंगे और इसके पश्चात् पूर्ण रूप से विधि के अनुसरण में एक युक्तियुक्त और अभिव्यक्त आदेश पारित किया जाएगा । ऊपर उपदर्शित सीमा तक रिट याचिकाएं मंजूर की जाती हैं । (पैरा 7, 8 और 9)

अनुसरित निर्णय

पैरा

[2014] ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 3371 = (2014) 9 एस. सी. सी. 105 : **गोरखा सेक्यूरिटी सर्विसिज़** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली सरकार और अन्य** ; 7, 8

[2010] 2010 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 7105 = (2010) 13 एस. सी. सी. 427 : **ओरिक्स फिशरीज़ प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **भारत संघ** । 6

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2014 की रिट याचिका (सिविल) सं. 1993.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से	सर्वश्री किशोर भादुड़ी, राघवेन्द्र प्रधान, अमृतो दास और पवन केशरवानी
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री अरूण साउ, दिलमान रति मिंज, एच. बी. अग्रवाल और श्रीमती मीरा जायसवाल

न्यायमूर्ति संजय के. अग्रवाल – चूंकि इन रिट याचिकाओं में विधि और तथ्य का सामान्य प्रश्न अन्तर्वलित है इसलिए इन्हें साथ-साथ सुना जा रहा है और इनका इस सामान्य आदेश द्वारा निपटान किया जा रहा है ।

2. रिट याचिकाओं का ये समूह तारीख 5 दिसंबर, 2014 के उस सामान्य आदेश के विरुद्ध फाइल किया गया है जिसके द्वारा याचियों के हक में मंजूर किया गया भूमि का पट्टा राज्य सरकार द्वारा इस निष्कर्ष के साथ रद्द किया गया है कि प्रश्नगत भूमि की टैंक के परिरक्षण और सौन्दर्यकरण के लिए और राष्ट्रीय राजमार्ग को विस्तारित करने के लिए आवश्यकता है ।

3. याचियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री किशोर भादुड़ी, श्री राघवेन्द्र प्रधान और श्री अमृतो दास ने यह दलील दी है कि पट्टा अवधि की समाप्ति नहीं हुई है और वे अपने हक में विद्यमान विधिमान्य पट्टे के आधार पर लंबे समय से काबिज हैं तथापि, कारण बताओ सूचना के बिना और उन्हें सुनवाई का समुचित अवसर दिए बिना तथा नगर निगम द्वारा ऐसा कुछ भी साबित किए बिना कि प्रश्नगत भूमि टैंक के परिरक्षण के लिए और सड़क को विस्तारित करने के लिए अपेक्षित है, राज्य सरकार द्वारा प्रश्नगत पट्टा अपरिपक्व समय पर पर्यवसित कर दिया गया है और वह भी अभिव्यक्ति विहीन और कारण रहित आदेश द्वारा, इसलिए यह अपास्त किए जाने योग्य है ।

4. राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान् उप महाधिवक्ता श्री अरूण

साउ और नगर निगम की ओर से उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री एच. बी. अग्रवाल ने आक्षेपित आदेश का समर्थन किया है ।

5. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और उनके द्वारा दी गई परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार किया और पूर्ण सतर्कता के साथ अभिलेख का परिशीलन किया ।

6. याचियों की ओर से दी गई प्रथम दलील यह है कि याचियों पर न तो कारण बताओ सूचना की तामील की गई है और न ही उन्हें सुनवाई का अवसर दिया गया है और इसके अतिरिक्त पट्टा अवधि का उस तारीख़ को पूर्णतया पर्यवसान नहीं हुआ है जिस तारीख को इसे रद्द किया गया था । विद्वान् उप महाधिवक्ता श्री साउ से इस बारे में पूछे जाने पर कि क्या याचियों पर कारण बताओ सूचना की तामील की गई है, उन्होंने इस न्यायालय को सूचना की एक प्रति दिखाई जो याचियों को एक राजस्व मामले में राजस्व अधिकारी के नाम में जारी की गई है जिसमें मामले की विशिष्ट संख्या, पक्षकारों के नाम, तारीख और सुनवाई का स्थान उल्लिखित है । यह किसी भी प्रकार से एक कारण बताओ सूचना नहीं है और यहां तक कि इस पर विशिष्ट राजस्व अधिकारी के हस्ताक्षर अंकित नहीं हैं, जो आदेश राजस्व अधिकारी द्वारा किया गया है । ऐसी अन्य कोई कारण बताओ सूचना जिसमें स्पष्ट रूप से अन्तर्वस्तु उल्लिखित हो, याचियों पर तामील नहीं की गई है जिसका कि याची उत्तर देते । इन सभी मामलों में ऐसी सूचनाएं याचियों को जारी नहीं की गई हैं जिनके संबंध में वे आरोपों का उत्तर देते और इसलिए उच्चतम न्यायालय द्वारा **ओरिक्स फिशरीज़ प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में अधिकथित विधि को दृष्टिगत करते हुए सही सूचनाएं नहीं मानी जा सकती हैं । न केवल इतना अपितु इसके पश्चात् सूचनाएं जारी की गई थीं और तहसीलदार द्वारा तामील कराई गई थी, राज्य सरकार द्वारा पट्टे के रद्दकरण के आदेश भी पारित किए गए थे । राज्य सरकार के समक्ष भी पट्टे के रद्दकरण के लिए न तो कारण साबित किए गए हैं और न ही साक्ष्य प्रस्तुत किया गया है और न ही तद्द्वारा

---

[1] 2010 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 7105 = (2010) 13 एस. सी. सी. 427.

याचियों को उस व्यक्ति की प्रतिपरीक्षा करना अनुज्ञात किया गया है जिसने एक विशिष्ट प्रयोजन अर्थात् टैंक के परिरक्षण और सड़क के विस्तार के लिए भूमि की आवश्यकता के बारे में कारण अभिलिखित किए हैं ।

7. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **गोरखा सेक्यूरिटी सर्विसिज़** बनाम **राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार और अन्य**[1] वाले मामले में इस संबंध में यह अधिकथित किया है कि कारण बताओ सूचना की क्या अन्तर्वस्तु होनी चाहिए और इस बारे में न्यायालय ने इस प्रकार मत व्यक्त किया है :-

"कारण बताओ सूचना की अंतर्वस्तु

21. तथापि, मुख्य विवाद्यक ऐसी कार्रवाई करने की अपेक्षा से संबंधित है जो की जानी प्रस्तावित है । कारण बताओ सूचना की तामील करने के पीछे मूल प्रयोजन सूचना प्राप्त करने वाले व्यक्ति के विरुद्ध विरचित मामले को जो उसके विरुद्ध पेश किया गया है, ठीक-ठीक समझने के लिए सूचना जारी करना है । इसके द्वारा यह अपेक्षित है कि उसके द्वारा किए गए अभिकथित भंग और व्यतिक्रम को विस्तृत कथन द्वारा बताया जाए जिससे कि उसे इसके खंडन के लिए अवसर प्राप्त हो सके । हमारे मतानुसार दूसरी अपेक्षा कार्रवाई की प्रकृति है जो ऐसे किसी भंग के लिए प्रस्तावित की जानी है । ऐसा इसलिए भी होना चाहिए जिससे कि सूचना प्राप्तकर्ता यह उपदर्शित करने के लिए समर्थ हो सके कि संबंधित मामले में प्रस्तावित कार्रवाई की आवश्यकता नहीं है भले ही शिकायत किए गए व्यतिक्रम/भंगों को संतोषजनक रूप से स्पष्ट न किया गया हो । जहां तक उसे काली सूची में डालने की बात है, ऐसी अपेक्षा इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए अधिक प्रभावी बन जाती है कि यह परेशानी को बढ़ाने वाली कार्रवाई है ।

22. उच्च न्यायालय ने मात्र यह कहा है कि कारण बताओ

---

[1] ए. आई. आर. 2014 एस. सी. 3371 = (2014) 9 एस. सी. सी. 105.

सूचना का प्रयोजन सूचना प्राप्तकर्ता को प्राथमिक रूप से उन आधारों को उपलब्ध कराना है जिनके आधार पर उसके विरुद्ध कार्रवाई प्रस्तावित है । निस्संदेह, उच्च न्यायालय इस सीमा तक न्यायोचित है । तथापि, समान रूप से इस बारे में उल्लेख करना भी आवश्यक है कि यदि सूचना प्राप्तकर्ता उन आधारों को संतोषजनक रूप से तुष्ट नहीं करता जिन पर ऐसी कार्रवाई प्रस्तावित है तो उसके क्या परिणाम होंगे । अन्यथा भी हमारी यह राय है कि नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए कारण बताओ सूचना के लिए निम्नलिखित दो अपेक्षाओं को पूरा करना चाहिए अर्थात् –

(i) उस सामग्री/आधारों का उल्लेख किया जाए जिनके आधार पर विभाग के अनुसार कार्रवाई करने की आवश्यकता है ;

(ii) उस विशिष्ट शास्ति/कार्रवाई का उल्लेख किया जाए जो की जानी अपेक्षित है । उच्च न्यायालय इस दूसरी अपेक्षा पर विचार करने में विफल रहा है ।

हम यह उल्लेख कर सकते हैं कि यदि कारण बताओ सूचना में विनिर्दिष्ट रूप से इस बारे में उल्लेख नहीं है तथापि, यदि इसके परिशालन से स्पष्ट रूप से और सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता हो तो यह इस अपेक्षा को पूरा करने के लिए पर्याप्त होगी ।"

8. **गोरखा सेक्यूरिटी सर्विसिज** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों का अनुसरण करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि याचियों को जारी की गई अभिकथित कारण बताओ सूचना में राजस्व अधिकारी का नाम, विशेष मामला संख्या, पक्षकारों के नाम और सुनवाई की तारीख का उल्लेख किया गया है तथापि, उन आधारों का उल्लेख नहीं है जिनके आधार पर पट्टा रद्द किए जाने की आवश्यकता है । अत: याचियों को सूचना का प्रतिवाद करने/जवाब देने का कोई अवसर नहीं दिया गया है जिनके आधार पर राज्य ने याचियों के पट्टे के पर्यवसान के लिए प्रस्ताव किया है ।

9. अन्यथा भी, पट्टे के रद्दकरण के सिविल परिणाम होते हैं और इसलिए याचियों को सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर देकर कार्यवाही की जानी चाहिए, तथापि, ऐसा नहीं किया गया है । निष्कर्ष स्वरूप पट्टे का रद्दकरण साक्ष्य से समर्थित सम्यक्ततः कार्यवाही आरंभ किए बिना और अन्य पक्षकारों को साक्ष्य पेश करने/खंडन करने के लिए अवसर दिए बिना किया गया है । राज्य सरकार द्वारा पट्टा रद्द करने के लिए अवलंब ली गई सामग्री का भी याचियों को प्रदाय नहीं किया गया है और इसलिए इसका परिणाम यह है कि आदेश पारित करने में नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का भंग किया गया है । अतः तारीख 5 दिसंबर, 2014 का आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है और इसलिए इसे अभिखंडित किया जाता है । प्रत्यर्थी/राज्य सरकार विधि के अनुसरण में कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र है । यदि नए सिरे से कार्यवाहियां आरंभ की जाती हैं तब दस्तावेज/सामग्री द्वारा समर्थित सम्यक्ततः विरचित कारण बताओ सूचना याचियों को जवाब फाइल करने के लिए युक्तियुक्त समय देते हुए जारी की जाएगी और पक्षकार साक्ष्य पेश करने और अपने-अपने पक्षकथनों के समर्थन में सामग्री पेश करने के हकदार होंगे और इसके पश्चात् पूर्ण रूप से विधि के अनुसरण में एक युक्तियुक्त और अभिव्यक्त आदेश पारित किया जाएगा ।

10. ऊपर उपदर्शित सीमा तक रिट याचिकाएं मंजूर की जाती हैं । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मह.

(2019) 1 सि. नि. प. 477 छत्तीसगढ़

पूजा सुमेर पुरोहित (श्रीमती)

बनाम

सुमेर मदन लाल पुरोहित

तारीख 9 मई, 2018

न्यायमूर्ति गौतम भादुड़ी

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13ख(2) – आपसी सम्मति द्वारा विवाह-विच्छेद – 6 मास की उपशमन अवधि की छूट के लिए संयुक्त आवेदन – निचले न्यायालय द्वारा खारिजी – पक्षकारों द्वारा विवाह के 2-3 दिन के पश्चात् से ही पृथक्-पृथक् रहना – पक्षकारों के बीच सुलह के समस्त प्रयास विफल होना – दोनों पक्षकारों द्वारा संयुक्त आवेदन में इस बात का उल्लेख किया जाना कि वे विवाह-विच्छेद के पश्चात् पुन: विवाह करने के इच्छुक हैं – जहां पक्षकारों के बीच सुलह के कोई आसार नजर नहीं आते हों और पक्षकारों की व्यथा बढ़ने की संभावना हो वहां उपशमन अवधि में छूट देकर विवाह विघटित किया जाना ही उचित है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रतिवादी-पत्नी-पूजा पुरोहित का विवाह वादी-सुमेर पुरोहित के साथ तारीख 1 फरवरी, 2017 को हुआ था । पक्षकारों का यह पक्षकथन है कि विवाह के पश्चात् वे लंबे समय तक एक दूसरे के साथ वैवाहिक नातेदारी बनाए नहीं रख सके और उन्होंने तारीख 4 फरवरी, 2017 से पृथक्-पृथक् रहना आरंभ कर दिया । इसके पश्चात् दोनों पक्षकारों अर्थात् पति और पत्नी ने तारीख 5 फरवरी, 2018 को हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन परस्पर सम्मति से विवाह-विच्छेद के लिए अनुरोध करते हुए संयुक्त रूप से आवेदन फाइल किया था । आवेदन फाइल करने के पश्चात् विद्वान् निचले न्यायालय ने तारीख 6 फरवरी, 2018 को मध्यस्थता और परामर्श के लिए सुनवाई की अगली तारीख 26 मार्च, 2018 के रूप में नियत की । मध्यस्थता और परामर्श के प्रयास विफल हुए थे और परिणामस्वरूप सुनवाई की अगली तारीख 7 अगस्त, 2018 नियत की

गई थी । इस दौरान तारीख 2 अप्रैल, 2018 को पति और पत्नी ने 6 मास की उपशमन अवधि से छूट के लिए संयुक्त रूप से एक आवेदन फाइल किया । विद्वान् निचले न्यायालय ने उक्त आवेदन इस आधार पर खारिज कर दिया कि चूंकि पक्षकारों ने यह कहा है कि वे पुन: विवाह करना चाहते हैं और इसलिए यह महसूस किया गया कि पक्षकारों द्वारा 6 मास की उपशमन अवधि में छूट देने के लिए आवेदन परोक्ष हेतु से और पक्षकारों की दुरभिसंधि द्वारा फाइल किया गया था । वर्तमान याचिका 2018 के सिविल वाद सं. 113 में मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, रायपुर द्वारा तारीख 2 अप्रैल, 2018 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा दोनों पक्षकारों द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख(2) में यथा उपबंधित 6 मास की उपशमन अवधि (धैर्य अवधि) में छूट देने के लिए फाइल किया गया संयुक्त आवेदन खारिज किया गया है । अत: वर्तमान रिट याचिका फाइल की गई । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – याचिका में फाइल किए गए दस्तावेजों का परिशीलन किया गया । अभिलेख में हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन आवेदन सम्मिलित है । यह कहा गया है कि दोनों पक्षकार साथ-साथ नहीं रह सकते और वे विवाह के पश्चात् 2-3 दिन तक ही साथ-साथ रहे हैं और उन दोनों के बीच मत भिन्नता के कारण पक्षकारों अर्थात् पति और पत्नी के बीच नातेदारी सौहार्दपूर्ण नहीं है । आवेदन में यह भी कहा गया है कि पक्षकारों के बीच सभी स्त्री धनों का व्यवस्थापन हो गया है और वे दोनों ही अपनी नातेदारी को जारी रखना नहीं चाहते । अभिलेख से यह भी उपदर्शित होता है कि आवेदन के लंबन के दौरान हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन 6 मास की उपशमन (धैर्य) अवधि को त्यक्त करने के लिए एक आवेदन फाइल किया गया था क्योंकि दोनों पक्षकार अर्थात् पति और पत्नी सुशिक्षित हैं और एक दूसरे के साथ नहीं रह सकते और परिणामत: उन्होंने उक्त अवधि को त्यक्त करने के लिए अनुरोध किया था । आदेश-पत्र से यह उपदर्शित होता है कि परस्पर विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन तारीख 5 फरवरी, 2018 को फाइल किया गया था और इसलिए धारा 13ख में यथा उल्लिखित 6 मास की उपशमन अवधि तारीख 4 अगस्त, 2018

को समाप्त हो गई । 6 मास की उपशमन अवधि में छूट देने के लिए आवेदन तारीख 2 अप्रैल, 2018 को फाइल किया गया था । वर्तमान मामले को उपर्युक्त सिद्धांत लागू करने पर ये तथ्य सामने आते हैं कि तारीख 1 फरवरी, 2017 को विवाह के अव्यवहित पश्चात् दोनों पक्षकारों अर्थात् पति और पत्नी ने यह अभिकथित करते हुए विवाह-विच्छेद के लिए संयुक्त रूप से आवेदन किया था कि वे तारीख 4 फरवरी, 2017 से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं और इसलिए तारीख 5 फरवरी, 2018 को आपसी सम्मति से विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन फाइल किया गया था । आदेश-पत्र में इस तथ्य का भी उल्लेख है कि पक्षकारों को मिलाने के लिए सुलह कार्यवाहियां तारीख 26 मार्च, 2018 को विफल हो गई और तारीख 5 फरवरी, 2018 को आवेदन फाइल करने के पश्चात् तारीख 2 अप्रैल, 2018 को 6 मास की अवधि त्यक्त करने के लिए दूसरा आवेदन फाइल किया गया था जिसमें पक्षकारों ने यह अभिकथित किया था कि वे एक दूसरे के साथ नहीं रह सकते और विवाह-विच्छेद के पश्चात् वे पुन: विवाह करना चाहते हैं । अत: सभी आवश्यक विवक्षाओं द्वारा यह उपदर्शित होता है कि पुन: विचार करने के पश्चात् भी पक्षकारों की यह अटल राय बनी और यह तय हुआ कि वे साथ-साथ नहीं रह सकते और इसलिए विवाह-विच्छेद चाहते हैं । नैसर्गिक परिणाम के रूप में यह कहा जा सकता है कि याची और प्रत्यर्थी दोनों की ओर से ऋजुतापूर्वक यह कहा गया है कि वे विवाह-विच्छेद की डिक्री के पश्चात् पुन: विवाह करना चाहते हैं । इस प्रकार के कथन से उनके पृथक् रहने के आशय की पुष्टि होती है और उपशमन की अवधि की प्रतीक्षा करने से केवल उनकी व्यथा ही बढ़ेगी । इन परिस्थितियों के अधीन कुटुंब न्यायालय, रायपुर द्वारा तारीख 2 अप्रैल, 2018 को पारित आदेश अपास्त किया जाता है । याची और प्रत्यर्थी द्वारा 6 मास की उपशमन अवधि को त्यक्त करने के लिए फाइल किया गया संयुक्त आवेदन मंजूर किया जाता है । (पैरा 5, 6, 8 और 9)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[2017]	ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 4417 = (2017) 8 एस. सी. सी. 746 : **अमर दीप सिंह** बनाम **हरवीन कौर** ।	4, 7

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2018 की रिट याचिका सं. 353.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री सौरभ शर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री नीरज चौबे

न्यायमूर्ति गौतम भादुड़ी – वर्तमान याचिका 2018 के सिविल वाद सं. 113 में मुख्य न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय, रायपुर द्वारा तारीख 2 अप्रैल, 2018 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा दोनों पक्षकारों द्वारा हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख(2) में यथा उपबंधित 6 मास की उपशमन अवधि (धैर्य अवधि) में छूट देने के लिए फाइल किया गया संयुक्त आवेदन खारिज किया गया है ।

2. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि प्रतिवादी-पत्नी-पूजा पुरोहित का विवाह वादी-सुमेर पुरोहित के साथ तारीख 1 फरवरी, 2017 को हुआ था । पक्षकारों का यह पक्षकथन है कि विवाह के पश्चात् वे लंबे समय तक एक दूसरे के साथ वैवाहिक नातेदारी बनाए नहीं रख सके और उन्होंने तारीख 4 फरवरी, 2017 से पृथक्-पृथक् रहना आरंभ कर दिया । इसके पश्चात् दोनों पक्षकारों अर्थात् पति और पत्नी ने तारीख 5 फरवरी, 2018 को हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन परस्पर सम्मति से विवाह-विच्छेद के लिए अनुरोध करते हुए संयुक्त रूप से आवेदन फाइल किया था । आवेदन फाइल करने के पश्चात् विद्वान् निचले न्यायालय ने तारीख 6 फरवरी, 2018 को मध्यस्थता और परामर्श के लिए सुनवाई की अगली तारीख 26 मार्च, 2018 के रूप में नियत की । मध्यस्थता और परामर्श के प्रयास विफल हुए थे और परिणामस्वरूप सुनवाई की अगली तारीख 7 अगस्त, 2018 नियत की गई थी । इस दौरान तारीख 2 अप्रैल, 2018 को पति और पत्नी ने 6 मास की उपशमन अवधि से छूट के लिए संयुक्त रूप से एक आवेदन फाइल किया ।

3. विद्वान् निचले न्यायालय ने उक्त आवेदन इस आधार पर खारिज कर दिया कि चूंकि पक्षकारों ने यह कहा है कि वे पुन: विवाह करना चाहते हैं और इसलिए यह महसूस किया गया कि पक्षकारों द्वारा

6 मास की उपशमन अवधि में छूट देने के लिए आवेदन परोक्ष हेतु से और पक्षकारों की दुरभिसंधि द्वारा फाइल किया गया था ।

4. याची के विद्वान् काउंसेल तथा प्रत्यर्थी के विद्वान् काउसेंल दोनों ने ही यह दलील दी है कि दोनों पक्षकार विवाह के तीन दिन के पश्चात् से ही अर्थात् तारीख 4 फरवरी, 2017 से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं और सुलह के समस्त प्रयास विफल हो गए हैं और इसलिए दोनों पक्षकारों के बीच विवाह पूरी तरह खंडित हो गया है और उनके पुन: साथ-साथ रहने के कोई अवसर नहीं हैं । उन्होंने इस संबंध में **अमर दीप सिंह** बनाम **हरवीन कौर**[1] वाले मामले में अधिकथित विधि का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि विद्वान् निचले न्यायालय को परिस्थितियों के अधीन इस तथ्य की अवेक्षा करनी चाहिए थी कि दोनों ही पक्षकारों अर्थात् पति और पत्नी ने 6 मास की उपशमन अवधि में छूट देने के लिए संयुक्त रूप से अनुरोध किया है और तद्नुसार 6 मास की उपशमन अवधि में छूट देने के लिए आवेदन मंजूर किया जाना चाहिए था ।

5. याचिका में फाइल किए गए दस्तावेजों का परिशीलन किया गया । अभिलेख में हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13ख के अधीन आवेदन सम्मिलित है । यह कहा गया है कि दोनों पक्षकार साथ-साथ नहीं रह सकते और वे विवाह के पश्चात् 2-3 दिन तक ही साथ-साथ रहे हैं और उन दोनों के बीच मत भिन्नता के कारण पक्षकारों अर्थात् पति और पत्नी के बीच नातेदारी सौहार्दपूर्ण नहीं है । आवेदन में यह भी कहा गया है कि पक्षकारों के बीच सभी स्त्री धनों का व्यवस्थापन हो गया है और वे दोनों ही अपनी नातेदारी को जारी रखना नहीं चाहते । अभिलेख से यह भी उपदर्शित होता है कि आवेदन के लंबन के दौरान हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख के अधीन 6 मास की उपशमन (धैर्य) अवधि को त्यक्त करने के लिए एक आवेदन फाइल किया गया था क्योंकि दोनों पक्षकार अर्थात् पति और पत्नी सुशिक्षित हैं और एक दूसरे के साथ नहीं रह सकते और परिणामत: उन्होंने उक्त अवधि को त्यक्त करने के लिए अनुरोध किया था ।

---

[1] ए. आई. आर. 2017 एस. सी. 4417 = (2017) 8 एस. सी. सी. 746.

6. आदेश-पत्र से यह उपदर्शित होता है कि परस्पर विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन तारीख 5 फरवरी, 2018 को फाइल किया गया था और इसलिए धारा 13ख में यथा उल्लिखित 6 मास की उपशमन अवधि तारीख 4 अगस्त, 2018 को समाप्त हो गई । 6 मास की उपशमन अवधि में छूट देने के लिए आवेदन तारीख 2 अप्रैल, 2018 को फाइल किया गया था । इस संदर्भ में हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13ख इस मामले में सुसंगत है और इसलिए उद्धृत की जाती है :-

> "13ख. **पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद** - (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए यह है कि विवाह के दोनों पक्षकार मिलकर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह विघटन के लिए अर्जी, चाहे ऐसा विवाह, विवाह विधि संशोधन अधिनियम, 1976 के प्रारंभ पूर्व या उसके पश्चात् अनुष्ठापित किया गया हो, जिला न्यायालय में, इस आधार पर पेश कर सकेंगे कि वे एक वर्ष या उससे अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हैं और वे एक साथ नहीं रह सके हैं तथा वे इस बात के लिए परस्पर सहमत हो गए हैं कि विवाह का विघटन कर दिया जाना चाहिए ।
>
> (2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट अर्जी के पेश किए जाने की तारीख से छह मास के पश्चात् और उस तारीख से अठारह मास के पूर्व दोनों पक्षकारों को सुनने के पश्चात् और ऐसी जांच करने के पश्चात् जो यह ठीक समझे, अपना यह समाधान कर लेने पर कि विवाह, अनुष्ठापित हुआ है और अर्जी में किए गए प्रकथन सही हैं, यह घोषणा करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करेगा कि विवाह डिक्री की तारीख से विघटित हो जाएगा ।"

7. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **अमर दीप सिंह** बनाम **हरवीन कौर** (पूर्वोक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि आपसी सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद की संकल्पना वर्ष 1976 में पुर:स्थापित की गई थी तथापि, धारा 13ख(2) आपसी सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद की अर्जी फाइल करने के पश्चात् 6 मास की अवधि व्यतीत होने से पूर्व विवाह-विच्छेद मंजूर किए जाने पर वर्जन उपबंधित करती है । उक्त अवधि

पक्षकारों को इस बारे में सोचने-समझने के लिए समर्थ बनाने हेतु उपबंधित की गई है कि न्यायालय आपसी सहमति द्वारा विवाह-विच्छेद तभी मंजूर करे जब सुलह की कोई संभावना न रहे । माननीय उच्चतम न्यायालय ने पैरा 19 में निम्नलिखित रूप में सिद्धांत अधिकथित किए हैं :-

> "19. वर्तमान प्रास्थिति के लिए उपर्युक्त को लागू करते हुए हमारा यह मत है कि जहां न्यायालय का किसी मामले पर विचार करने पर यह समाधान हो जाता है कि धारा 13ख(2) के अधीन कानूनी अवधि को त्यक्त करने के लिए कोई मामला बनता है तो वह ऐसा निम्नलिखित बातों पर विचार करने के पश्चात् कर सकता है –
>
> (1) पक्षकारों के पृथक्करण पर धारा 13ख(1) के अधीन एक वर्ष की कानूनी अवधि के अतिरिक्त धारा 13ख(2) में विनिर्दिष्ट 6 मास की कानूनी अवधि प्रथम प्रस्ताव से पहले ही समाप्त हो चुकी हो ;
>
> (2) पक्षकारों के पुन: साथ रहने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 32क नियम 3/अधिनियम की धारा 23(2)/कुटुंब न्यायालय अधिनियम की धारा 9 के निबंधनों में प्रयासों सहित मध्यस्थता/सुलह के सभी प्रयास विफल हो गए हों और इस संबंध में आगे प्रयास करने के लिए निदेश देने पर सफलता की कोई संभावना न हो ;
>
> (3) पक्षकारों ने निर्वाह-व्यय, बालक की अभिरक्षा अथवा पक्षकारों के बीच लंबित अन्य सभी विवाद्यकों सहित उनके बीच विभेदों को पूर्ण रूप से सुलझा लिया हो ;
>
> (4) प्रतीक्षा अवधि केवल उनकी व्यथा को बढ़ाएगी ।"

8. वर्तमान मामले को उपर्युक्त सिद्धांत लागू करने पर ये तथ्य सामने आते हैं कि तारीख 1 फरवरी, 2017 को विवाह के अव्यवहित पश्चात् दोनों पक्षकारों अर्थात् पति और पत्नी ने यह अभिकथित करते हुए विवाह-विच्छेद के लिए संयुक्त रूप से आवेदन किया था कि वे तारीख 4 फरवरी, 2017 से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं और इसलिए तारीख

5 फरवरी, 2018 को आपसी सम्मति से विवाह-विच्छेद के लिए आवेदन फाइल किया गया था । आदेश-पत्र में इस तथ्य का भी उल्लेख है कि पक्षकारों को मिलाने के लिए सुलह कार्यवाहियां तारीख 26 मार्च, 2018 को विफल हो गई और तारीख 5 फरवरी, 2018 को आवेदन फाइल करने के पश्चात् तारीख 2 अप्रैल, 2018 को 6 मास की अवधि त्यक्त करने के लिए दूसरा आवेदन फाइल किया गया था जिसमें पक्षकारों ने यह अभिकथित किया था कि वे एक दूसरे के साथ नहीं रह सकते और विवाह-विच्छेद के पश्चात् वे पुन: विवाह करना चाहते हैं । अत: सभी आवश्यक विवक्षाओं द्वारा यह उपदर्शित होता है कि पुन: विचार करने के पश्चात् भी पक्षकारों की यह अटल राय बनी और यह तय हुआ कि वे साथ-साथ नहीं रह सकते और इसलिए विवाह-विच्छेद चाहते हैं । नैसर्गिक परिणाम के रूप में यह कहा जा सकता है कि याची और प्रत्यर्थी दोनों की ओर से ऋजुतापूर्वक यह कहा गया है कि वे विवाह-विच्छेद की डिक्री के पश्चात् पुन: विवाह करना चाहते हैं । इस प्रकार के कथन से उनके पृथक् रहने के आशय की पुष्टि होती है और उपशमन की अवधि की प्रतीक्षा करने से केवल उनकी व्यथा ही बढ़ेगी ।

9. इन परिस्थितियों के अधीन कुटुंब न्यायालय, रायपुर द्वारा तारीख 2 अप्रैल, 2018 को पारित आदेश अपास्त किया जाता है । याची और प्रत्यर्थी द्वारा 6 मास की उपशमन अवधि को त्यक्त करने के लिए फाइल किया गया संयुक्त आवेदन मंजूर किया जाता है । पक्षकार निचले न्यायालय के समक्ष अपने-अपने कथनों को अभिलिखित कराने के लिए तारीख 18 मई, 2018 को कुटुंब न्यायालय के समक्ष उपस्थित होंगे और तत्पश्चात् निचला न्यायालय विधि के अनुसार उनके मामले को न्यायनिर्णीत करेगा ।

10. परिणामत: रिट याचिका मंजूर की जाती है ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मह.

लीला अग्रवाल (श्रीमती)

बनाम

श्रीमती सरकार और एक अन्य

तारीख 6 सितंबर, 2018

न्यायमूर्ति राम प्रसन्न शर्मा

संपत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) – धारा 54, 58 और 60 – कृषि भूमि का बंधक – मोचन – प्रतिवादी द्वारा यह अभिवाक् किया जाना कि बंधक सशर्त विक्रय होने के कारण धन का प्रतिदाय न करने के कारण विक्रय बन गया था – साक्ष्य से यह साबित होना कि बंधकदार को भूमि का क़ब्जा प्रदत्त नहीं किया गया था – बंधक एक सादा बंधक होने के कारण वादी को बंधक के मोचन का अधिकार प्राप्त है तथापि, बंधकदार उचित ब्याज सहित बंधक की मूल धनराशि प्राप्त करने का हकदार है ।

छत्तीसगढ़ भू-राजस्व संहिता, 1959 (1959 का 20) – धारा 165(1) – भू-स्वामी द्वारा भूमि का बंधक – अंतरण का अधिकार – बंधक कर्ता के पास 10 एकड़ से कम असिंचित भूमि होना – ऐसा बंधक संहिता की धारा 165(1) के अतिक्रमण में होने के कारण विधिमान्य नहीं है ।

प्रत्यर्थी सं. 1/वादी ने अन्य बातों के साथ-साथ यह कथन करते हुए एक वाद फाइल किया था कि वह पटवारी हल्का सं. 10, मनेन्द्रगढ़ स्थित खसरा सं. 202/07, कुल क्षेत्रफल 5.40 एकड़ वाद भूमि/मकान की स्वामी है और उसने उक्त भूमि में से 2 एकड़ भूमि वर्ष 1990 में 75,000/- रुपए के लिए अपीलार्थी/प्रतिवादी के हक में बंधक की थी और इस संबंध में तारीख 17 अक्तूबर, 1990 को लिखित में बंधक-पत्र निष्पादित किया गया था । सिविल प्रकिया संहिता की धारा 96 के अधीन यह प्रथम अपील 2001 के सिविल वाद सं. 26ए में अपर जिला

न्यायाधीश, मनेन्द्रगढ़, जिला कोरिया (सी. जी.) द्वारा तारीख 14 नवंबर, 2003/2 दिसंबर, 2003 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसमें उक्त न्यायालय ने भूमि खसरा सं. 202/07 जिसका माप पटवारी हल्का सं. 10, मनेन्द्रगढ़ (निकट हंसय्या नदी, वार्ड सं. 1) में 2 एकड़ है, से संबंधित बंधक के मोचन के लिए वाद डिक्री किया है और अपीलार्थी को प्रत्यर्थी द्वारा तारीख 29 नवंबर, 2003 को जमा की गई 1,20,000/- रुपए की राशि देने का और प्रत्यर्थी सं. 1 के नाम में उक्त भूमि का नामांतरण करने का आदेश पारित किया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 54 के अनुसार विक्रय के लिए जंगम संपत्ति के कब्जे का परिदान आवश्यक है । इस धारा के उपबंध के अनुसार जंगम संपत्ति का परिदान मूर्त होना चाहिए जब विक्रेता खरीदार को अपने स्थान पर लाए या ऐसा व्यक्ति जैसा कि वह निदेशित करे, संपत्ति पर काबिज हो । वर्तमान मामले में चूंकि कब्जा परिदत्त नहीं किया गया था इसलिए यह जंगम संपत्ति के मूर्त विक्रय का मामला नहीं है । जहां यह सशर्त विक्रय द्वारा बंधक नहीं है वहां यह बंधक संपत्ति के कब्जे के परिदान के बिना बंधक की गई है जो कि सादा बंधक के रूप में परिभाषित अधिनियम, 1882 की धारा 58(ख) के अन्तर्गत आता है । अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी सं. 1 विचारण न्यायालय के समक्ष साक्षी कठघरे में पेश नहीं हुई और सत्यभूषण सरकार (पी. डब्ल्यू. 1) ने जो कि मुख्तारनामा धारक है, बंधक का संव्यवहार नहीं किया था और इसलिए प्रत्यर्थी सं. 1 के साक्ष्य के अभाव में उसके विरुद्ध अवधारणा की जाएगी । सत्यभूषण सरकार (पी. डब्ल्यू. 1) के सम्पूर्ण साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए यह दलील सार-रहित है । यह साक्षी प्रत्यर्थी सं. 1 का पति है और उसने संव्यवहार आरंभ होने की तारीख से दस्तावेज (प्रदर्श डी-2) के निष्पादन तक मामले में भाग लिया था । वह एक ऐसा मुख्तारनामा धारक नहीं है जिसे संव्यवहार की वैयक्तिक जानकारी न हो । वह एक ऐसा व्यक्ति है जिसे संव्यवहार की पूर्ण जानकारी है

और वह बंधक के संव्यवहार के दौरान प्रत्येक स्तर पर मौजूद रहा था । उसके साक्ष्य से संव्यवहार से संबंधित सभी तथ्य साबित होते हैं और अपीलार्थी द्वारा उसकी प्रतिपरीक्षा की गई है और उसके सम्पूर्ण साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए यह स्पष्ट होता है कि वह संव्यवहार का वास्तविक साक्षी है । अपीलार्थी की ओर से उद्धृत नजीरें स्पष्ट रूप से भिन्न हैं क्योंकि वर्तमान मामले में सत्यभूषण सरकार (पी. डब्ल्यू. 1) को संव्यवहार के ब्यौरों की वैयक्तिक जानकारी है । सभी सुसंगत परिस्थितियों के आधार पर यह स्पष्ट रूप से साबित हो गया है कि सत्यभूषण सरकार (पी. डब्ल्यू. 1) संव्यवहार का साक्षी था और इसलिए अपीलार्थी की ओर से दी गई उक्त दलील स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । (पैरा 9, 10, 11, 12 और 13)

वर्तमान मामले में वादपत्र के पैरा 6क में यह उल्लेख किया गया है कि प्रत्यर्थी सं. 1 के पास कुल 5 एकड़ 40 डेसीमल असिंचित भूमि है जिसके बारे में अपीलार्थी ने मात्र इनकार किया है । चूंकि इस तथ्य का खंडन नहीं किया गया है कि प्रत्यर्थी सं. 1 के पास 10 एकड़ से कम असिंचित भूमि है और इसलिए ऊपर उल्लिखित उपबंध के अनुसार भूमि का बंधक विधिमान्य नहीं है । अपीलार्थी की ओर से यह दलील दी गई है कि ब्याज की दर 4 प्रतिशत प्रतिमास थी और चूंकि प्रत्यर्थी सं. 1 प्रदर्श डी-2 में यथा उल्लिखित ब्याज जमा करने में विफल रही इसलिए संपत्ति का मोचन उपलब्ध नहीं है । अन्यथा भी कृषि भूमि से संबंधित संव्यवहार को दृष्टिगत करते हुए मासिक 4 प्रतिशत अथवा वार्षिक 48 प्रतिशत ब्याज की दर स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है इसलिए विचारण न्यायालय उक्त बंधक के लिए ब्याज के रूप में 25,000/- रुपए की धनराशि अधिनिर्णीत करने में और इसके अतिरिक्त बंधक के निष्पादन के खर्चो के रूप में 20,000/- रुपए की धनराशि अधिनिर्णीत करने में भी सही है । प्रत्यर्थी सं. 1 विचारण न्यायालय के समक्ष 1,20,000/- रुपए की धनराशि पहले ही जमा कर चुकी है और इसलिए विचारण न्यायालय उक्त बंधक संपत्ति के मोचन के लिए डिक्री पारित करने में सही है । विचारण न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष विचारण न्यायालय के

समक्ष पेश किए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के समुचित मूल्यांकन पर आधारित है और इसलिए इसमें अपील अधिकारिता का अवलंब लेते हुए किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । (पैरा 15, 16, 17 और 18)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2004 की प्रथम अपील सं. 28.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री रतबेश कुमार अग्रवाल

प्रत्यर्थी की ओर से श्री आर. के. जायसवाल

न्यायमूर्ति राम प्रसन्न शर्मा – सिविल प्रकिया संहिता की धारा 96 के अधीन यह प्रथम अपील 2001 के सिविल वाद सं. 26ए में अपर जिला न्यायाधीश मनेन्द्रगढ़, जिला कोरिया (सी. जी.) द्वारा तारीख 14 नवंबर, 2003/2 दिसंबर, 2003 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसमें उक्त न्यायालय ने भूमि खसरा सं. 202/07 जिसका माप पटवारी हल्का सं. 10, मनेन्द्रगढ़ (निकट हंसय्या नदी, वार्ड सं. 1) में 2 एकड़ है, से संबंधित बंधक के मोचन के लिए वाद डिक्री किया है और अपीलार्थी को प्रत्यर्थी द्वारा तारीख 29 नवंबर, 2003 को जमा की गई 1,20,000/- रुपए की राशि देने का और प्रत्यर्थी सं. 1 के नाम में उक्त भूमि का नामांतरण करने का आदेश पारित किया है ।

2. प्रत्यर्थी सं. 1/वादी ने अन्य बातों के साथ-साथ यह कथन करते हुए एक वाद फाइल किया था कि वह पटवारी हल्का सं. 10, मनेन्द्रगढ़ स्थित खसरा सं. 202/07, कुल क्षेत्रफल 5.40 एकड़ वाद भूमि/मकान की स्वामी है और उसने उक्त भूमि में से 2 एकड़ भूमि वर्ष 1990 में 75,000/- रुपए के लिए अपीलार्थी/प्रतिवादी के हक में बंधक की थी और इस संबंध में तारीख 17 अक्तूबर, 1990 को लिखित में बंधक-पत्र निष्पादित किया गया था ।

3. प्रकथनों के अनुसार पक्षकारों के बीच इस बाबत सहमति हुई थी कि प्रत्यर्थी सं. 1 एक लाख 20 हजार रुपए बंधक की मूल धनराशि और

25,000/- रुपए ब्याज तथा संपत्ति को बंधक करने में खर्चों के रूप में उपगत 20,000/- रुपए की धनराशि वापस करेगी ।

4. प्रत्यर्थी सं. 1/वादी के प्रकथनानुसार वाद संपत्ति प्रत्यर्थी सं. 1 के कब्जे में थी और जब उसने वर्ष 1993 में बंधक के मोचन के लिए अपीलार्थी से अनुरोध किया तो अपीलार्थी ने मोचन से इनकार कर दिया और यह उत्तर दिया कि दस्तावेज विक्रय की प्रकृति का है ।

5. अपीलार्थी के अनुसार बंधक सशर्त विक्रय द्वारा इस शर्त के साथ किया गया था कि यदि बंधक धन तीन वर्ष के भीतर वापस संदत्त नहीं किया जाता है तो दस्तावेज विक्रय का रूप अख्तयार कर लेगा । चूंकि प्रत्यर्थी सं. 1 ब्याज के साथ बंधक धनराशि का संदाय करने में विफल रही इसलिए दस्तावेज ने विक्रय का रूप अख्तयार कर लिया । अपीलार्थी का यह भी पक्षकथन है कि वर्तमान मामले में छत्तीसगढ़ भू-राजस्व संहिता, 1959 (जिसे आगे संक्षेप में "1959 की संहिता" कहा गया है) की धारा 165 लागू नहीं होती है ।

6. इस न्यायालय के समक्ष विचारार्थ प्रथम प्रश्न यह है कि क्या संव्यवहार सशर्त विक्रय द्वारा बंधक है अथवा यह सादा बंधक है जैसाकि विचारण न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है । प्रत्यर्थी सं. 1 ने सत्यभूषण सरकार (पी. डब्ल्यू. 1), परितोष सरकार (पी. डब्ल्यू. 2) और धनी राम (पी. डब्ल्यू. 3) का साक्ष्य पेश किया है । इसके विरुद्ध अपीलार्थी ने विजय कुमार खेड़िया (डी. डब्ल्यू. 1), हिम्मत लाल चावड़ा (डी. डब्ल्यू. 2) और प्रकाश शुक्ला (डी. डब्ल्यू. 3) का साक्ष्य पेश किया है । सत्यभूषण सरकार (पी. डब्ल्यू. 1) प्रत्यर्थी सं. 1 का जिसने अपीलार्थी के हक में अभिकथित बंधक निष्पादित किया था, पति है । इस साक्षी के अनुसार वह बंधक करने के दौरान मौजूद था और बंधक करने के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 1 प्रश्नगत भूमि पर काबिज रही थी और उसने उक्त भूमि पर धान की खेती की थी । इस साक्षी का कथन परितोष सरकार (पी. डब्ल्यू. 2) और धनी राम (पी. डब्ल्यू. 3) के साक्ष्य से समर्थित है । विजय कुमार खेड़िया (डी. डब्ल्यू. 1) ने जो अपीलार्थी का साक्षी है, यह स्वीकार किया है कि प्रत्यर्थी सं. 1 बंधक करने के

पश्चात् भी भूमि पर काबिज रही है । दोनों पक्षों के साक्ष्य से विचारण न्यायालय के समक्ष यह साबित हो गया है कि प्रत्यर्थी सं. 1 बंधक करने के पश्चात् प्रश्नगत भूमि पर काबिज रही थी ।

7. सादा बंधक को संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (जिसे आगे संक्षेप में "अधिनियम, 1882" कहा गया है) की धारा 58 में परिभाषित किया गया है और सशर्त विक्रय द्वारा बंधक को धारा 58 उपखंड (ग) में परिभाषित किया गया है, जो इस प्रकार है :-

> "(ख) **सादा बंधक** - जहां बंधककर्ता बंधक-सम्पत्ति का कब्जा परिदत्त किए बिना बंधक धन चुकाने के लिए अपने को व्यक्तिगत रूप से आबद्ध करता है और अभिव्यक्त या विवक्षित तौर पर करार करता है कि उस संविदा के अनुसार संदाय करने में उसके असफल रहने की दशा में बंधकदार को बंधक-सम्पत्ति का विक्रय कराने का और विक्रय के आगमों को जहां तक वह आवश्यक हो, बंधक धन के संदाय में उपयोजित कराने का अधिकार होगा, वहां वह संव्यवहार सादा बंधक और बंधकदार सादा बंधकदार कहलाता है ।
>
> (ग) **सशर्त विक्रय द्वारा बंधक** - जहां कि कोई बंधककर्ता-सम्पत्ति को दृश्यत: बेच देता है -
>
> अथवा
>
> इस शर्त पर कि ऐसा संदाय किए जाने पर विक्रय शून्य हो जाएगा, अथवा
>
> इस शर्त पर कि ऐसा संदाय किए जाने पर क्रेता वह सम्पत्ति को अन्तरित कर देगा, वहां ऐसा संव्यवहार सशर्त विक्रय द्वारा बंधक और बंधकदार सशर्त विक्रय द्वारा बंधकदार कहलाता है ।"

8. वर्तमान मामले में बंधक संपत्ति अपीलार्थी को प्रदत्त नहीं की गई थी, इसलिए यह एक ऐसा मामला नहीं है जहां प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा संपत्ति दृश्यत: विक्रीत की गई हो ।

9. अधिनियम, 1882 की धारा 54 के अनुसार विक्रय के लिए जंगम संपत्ति के कब्जे का परिदान आवश्यक है । इस धारा के उपबंध के अनुसार जंगम संपत्ति का परिदान मूर्त होना चाहिए जब विक्रेता खरीदार को अपने स्थान पर लाए या ऐसा व्यक्ति जैसा कि वह निदेशित करे, संपत्ति पर काबिज हो ।

10. वर्तमान मामले में चूंकि कब्जा परिदत्त नहीं किया गया था इसलिए यह जंगम संपत्ति के मूर्त विक्रय का मामला नहीं है । जहां यह सशर्त विक्रय द्वारा बंधक नहीं है वहां यह बंधक संपत्ति के कब्जे के परिदान के बिना बंधक की गई है जो कि सादा बंधक के रूप में परिभाषित अधिनियम, 1882 की धारा 58(ख) के अन्तर्गत आता है ।

11. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी सं. 1 विचारण न्यायालय के समक्ष साक्षी कठघरे में पेश नहीं हुई और सत्यभूषण सरकार (पी. डब्ल्यू. 1) ने जो कि मुख्तारनामा धारक है, बंधक का संव्यवहार नहीं किया था और इसलिए प्रत्यर्थी सं. 1 के साक्ष्य के अभाव में उसके विरुद्ध अवधारणा की जाएगी ।

12. सत्यभूषण सरकार (पी. डब्ल्यू. 1) के सम्पूर्ण साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए यह दलील सार-रहित है । यह साक्षी प्रत्यर्थी सं. 1 का पति है और उसने संव्यवहार आरंभ होने की तारीख से दस्तावेज (प्रदर्श डी-2) के निष्पादन तक मामले में भाग लिया था । वह एक ऐसा मुख्तारनामा धारक नहीं है जिसे संव्यवहार की वैयक्तिक जानकारी न हो । वह एक ऐसा व्यक्ति है जिसे संव्यवहार की पूर्ण जानकारी है और वह बंधक के संव्यवहार के दौरान प्रत्येक स्तर पर मौजूद रहा था । उसके साक्ष्य से संव्यवहार से संबंधित सभी तथ्य साबित होते हैं और अपीलार्थी द्वारा उसकी प्रतिपरीक्षा की गई है और उसके सम्पूर्ण साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए यह स्पष्ट होता है कि वह संव्यवहार का वास्तविक साक्षी है ।

13. अपीलार्थी की ओर से उद्धृत नजीरें स्पष्ट रूप से भिन्न हैं क्योंकि वर्तमान मामले में सत्यभूषण सरकार (पी. डब्ल्यू. 1) को संव्यवहार के ब्यौरों की वैयक्तिक जानकारी है । सभी सुसंगत

परिस्थितियों के आधार पर यह स्पष्ट रूप से साबित हो गया है कि सत्यभूषण सरकार (पी. डब्ल्यू. 1) संव्यवहार का साक्षी था और इसलिए अपीलार्थी की ओर से दी गई उक्त दलील स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है ।

14. अपीलार्थी की ओर से यह दलील दी गई है कि 1959 की संहिता की धारा 165 वर्तमान मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को लागू नहीं होती है । 1959 की धारा 165(1) इस प्रकार है :-

> *"165. अंतरण का अधिकार - (1) इस धारा के अन्य उपबंधों और धारा 168 के उपबंध के अध्यधीन कोई भूमि-स्वामी अपनी भूमि में अपने हित का अंतरण कर सकता है ।
>
> (2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी -
>
> (क) किसी भूमि-स्वामी द्वारा किसी भूमि का बंधक एतत्पश्चात् विधिमान्य नहीं होगा जब तक कि उसके पास किसी विल्लंगम या प्रभार से मुक्त कम से कम 5 एकड़ सिंचित भूमि अथवा 10 एकड़ असिंचित भूमि न बची हो ।"

15. वर्तमान मामले में वादपत्र के पैरा 6क में यह उल्लेख किया गया है कि प्रत्यर्थी सं. 1 के पास कुल 5 एकड़ 40 डेसीमल असिंचित भूमि है जिसके बारे में अपीलार्थी ने मात्र इनकार किया है । चूंकि इस तथ्य का खंडन नहीं किया गया है कि प्रत्यर्थी सं. 1 के पास 10 एकड़ से कम असिंचित भूमि है और इसलिए ऊपर उल्लिखित उपबंध के अनुसार भूमि का बंधक विधिमान्य नहीं है ।

---

*अंग्रेजी में यह इस प्रकार है -

> "165. Right of transfer - (1) Subject to the other provisions of this section and the provision of section 168 a Bhumiswami may transfer any interest in his land.
>
> (2) Notwithstanding anything contained in sub-section (1) -
>
> (a) no mortgage of any land by a Bhumiswami shall hereafter be valid unless atleast five acres of irrigated or ten acres of unirrigated land is left with him free from any encumbrance or charge."

16. अपीलार्थी की ओर से यह दलील दी गई है कि ब्याज की दर 4 प्रतिशत प्रतिमास थी और चूंकि प्रत्यर्थी सं. 1 प्रदर्श डी-2 में यथा उल्लिखित ब्याज जमा करने में विफल रही इसलिए संपत्ति का मोचन उपलब्ध नहीं है । इस दलील के उत्तर के लिए 1959 की संहिता की धारा 165(3) उद्धृत की जा रही है :-

> *(3) जहां कोई भूमि-स्वामी उपधारा (2) के उपबंधों के अनुसरण में अपनी भूमि के किसी भोगाधिकारी बंधक के सिवाय कोई बंधक करता है वहां बंधक विलेख में उल्लिखित किसी बात के होते हुए भी बंधक के अधीन उपगत ब्याज की संपूर्ण धनराशि बंधकदार द्वारा ऋण दी गई मूल धनराशि के आधे से अधिक नहीं होगी ।"

17. अन्यथा भी कृषि भूमि से संबंधित संव्यवहार को दृष्टिगत करते हुए मासिक 4 प्रतिशत अथवा वार्षिक 48 प्रतिशत ब्याज की दर स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है इसलिए विचारण न्यायालय उक्त बंधक के लिए ब्याज के रूप में 25,000/- रुपए की धनराशि अधिनिर्णीत करने में और इसके अतिरिक्त बंधक के निष्पादन के खर्चों के रूप में 20,000/- रुपए की धनराशि अधिनिर्णीत करने में भी सही है । प्रत्यर्थी सं. 1 विचारण न्यायालय के समक्ष 1,20,000/- रुपए की धनराशि पहले ही जमा कर चुकी है और इसलिए विचारण न्यायालय उक्त बंधक संपत्ति के मोचन के लिए डिक्री पारित करने में सही है ।

18. विचारण न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष विचारण न्यायालय के समक्ष पेश किए गए मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के समुचित मूल्यांकन पर आधारित है और इसलिए इसमें अपील अधिकारिता का अवलंब लेते हुए किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

---

* अंग्रेजी में यह इस प्रकार है -

> "(3) Where a Bhumiswami effects a mortgage other than a usufructuary mortgage of his land in pursuance of the provisions of sub-section (2), then notwithstanding anything contained in the mortgage deed, the total amount of interest accruing under the mortgage shall not exceed half the sum of the principal amount advanced by the mortgagee."

19. तद्नुसार निम्नलिखित शर्तों पर अपीलार्थी के विरुद्ध और प्रत्यर्थियों के हक में डिक्री पारित की जाती है :-

(i) अपील खर्चे सहित खारिज की जाती है ।

(ii) अपीलार्थी आरंभ से अंत तक प्रत्यर्थी सं. 1 के खर्चों को वहन करेगी ।

(iii) अभिवक्ताओं की फीस यदि प्रमाणित की जाती है, प्रमाणपत्र के अनुसार अथवा अनुसूची के अनुसार जो भी कम हो, संगणित की जाए ।

(iv) तद्नुसार डिक्री तैयार की जाए ।

अपील खारिज की गई ।

महे.

(2019) 1 सि. नि. प. 494 **छत्तीसगढ़**

सुनील जैन

बनाम

विशाल राम साहू

तारीख 14 सितंबर, 2018

न्यायमूर्ति प्रशान्त कुमार मिश्रा और न्यायमूर्ति (श्रीमती) विमला सिंह कपूर

संविदा अधिनियम, 1872 (1872 का 9) - धारा 74 और संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 (1882 का 4) - धारा 55 - संपत्ति के विक्रय के लिए विक्रय करार - अधिदाय धन - क्रेता द्वारा संपत्ति के दोष के कारण क्रय करने से इनकार - विक्रेता द्वारा अधिदाय धन का समपहरण - क्रेता द्वारा करार के समय विक्रेता को अधिदाय धनराशि न कि अग्रिम धनराशि दी जानी - करार में अधिदाय धनराशि के समपहरण के संबंध में कोई उल्लेख न किया जाना - विक्रेता धनराशि को समपहृत करने का हक़दार नहीं है ।

अपीलार्थी सुनील जैन प्रत्यर्थी पीताम्बर साहू, धनेशरम साहू और विशाल राम साहू से भूमि का भावी क्रेता है । पक्षकारों के बीच विक्रय-करार तारीख 8 अक्तूबर, 2011 को हुआ था और प्रत्यर्थी/प्रतिवादियों को 1,25,000/- रुपए की अधिदाय धनराशि संदत्त की गई थी । वादी के अनुसार उसने भूखंडों को विकसित करने और विक्रीत करने हेतु संपत्ति क्रय करने के लिए करार किया था । तथापि, करार होने के पश्चात् उसकी जानकारी में यह बात आई कि भूमि हरित पट्टी के लिए महा-योजना (मास्टर प्लान) के लिए आरक्षित है । चूंकि उक्त भूमि उसके लिए उपयोगी नहीं थी इसलिए वह इस भूमि को आगे क्रय करने का इच्छुक नहीं था और उसने प्रतिवादी से अधिदाय धनराशि वापस करने के लिए अनुरोध किया जिसे प्रतिवादी ने यह कहते हुए नकार दिया कि वह संपत्ति को विक्रीत करने के लिए तैयार है । वर्तमान अपील 2014 के सिविल वाद सं. 25-बी में अष्टम् अपर जिला न्यायाधीश, दुर्ग द्वारा तारीख 23 फरवरी, 2017 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसमें विचारण न्यायालय ने अधिदाय धनराशि के प्रतिदाय के लिए वादी/अपीलार्थी के वाद को खारिज किया है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने करार प्रदर्श पी-1 का भी परिशीलन किया जिसमें केवल 6 खंड उल्लिखित हैं और जो दोनों पक्षकारों द्वारा सम्यक्त: हस्ताक्षरित है, जो अधिदाय धनराशि के समपहरण के लिए किसी खंड का उल्लेख किए बिना तारीख 8 अक्तूबर, 2011 को निष्पादित किया गया था । करार के खंड 2 में भावी विक्रेता के लिए "बयाना" अर्थात् अधिदाय धनराशि के रूप में संदत्त धनराशि के बारे में यह निर्देश है कि इसे विक्रय विलेख के रजिस्ट्रीकरण के समय विक्रय प्रतिफल में समायोजित किया जाएगा । अत: पक्षकारों का यह किसी भी प्रकार से आशय नहीं था कि करार के निष्पादन के समय भावी विक्रेता को इस प्रकार संदत्त राशि अग्रिम धन होगा न कि अधिदाय धन और ऐसा प्रमितत: इस कारण भी है कि करार में कोई समपहरण खंड सम्मिलित नहीं है । केवल करार में प्रयुक्त शब्दों द्वारा यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि शब्द रकम की प्रकृति का अवधारण करेंगे

अपितु वस्तुत: पक्षकार के आशय पर विचार किया जाना चाहिए कि उसने 'अधिदाय धन' के रूप में किस बात का उल्लेख किया है और यह उल्लेख वस्तुत: कोई निक्षेप हो सकता है अथवा अग्रिम धन हो सकता है जो अन्तत: वास्तविक रूप में किसी अधिदाय या क्रय का भाग हो सकता है । करार में ऐसा कोई विबंध नहीं है कि धनराशि संविदा के अनुपालन के लिए एक प्रतिभूति के रूप में संदत्त की गई है और क्रेता द्वारा संविदा के निबंधनों को देखते हुए व्यतिक्रम करने की दशा में किसी अधिदाय के रूप में इस प्रकार संदत्त धनराशि समपहृत होगी । अत: अधिदाय संविदा के अनुपालन के लिए प्रतिभूति के रूप में संदत्त नहीं किया गया था और यह विक्रय प्रतिफल के भाग के रूप में संदत्त किया गया था जो विक्रय विलेख के निष्पादन के समय समायोजित किया जाना था । अत: विक्रेता उच्चतम न्यायालय द्वारा सतीश बत्रा वाले मामले में अधिकथित विधि को दृष्टिगत करते हुए धनराशि को समपहृत करने का हकदार नहीं है और इसलिए विचारण न्यायालय ने वाद खारिज करके विधि की गंभीर गलती की है । परिणामत:, अपील मंजूर की जाती है । आक्षेपित निर्णय और डिक्री अपास्त की जाती है और इसके बजाय वादी का वाद मंजूर करते हुए यह डिक्री पारित की जाती है कि किसी ब्याज के बिना 1,25,000/- रुपए की अधिदाय धनराशि वापस की जाएगी । पक्षकार मुकदमेदारी में हुआ अपना-अपना खर्च स्वयं वहन करेंगे । (8, 12, 14 और 15)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[2013]	(2013) 1 एस. सी. सी. 345 = 2012 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5869 : **सतीश बत्रा** बनाम **सुधीर रावल** ;	7, 13, 14
[2004]	ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1176 = (2004) 3 एस. सी. सी. 711 : **वीडियोकान प्रापर्टीज लिमिटेड** बनाम **बालचन्द्र लेबोरेट्रीज** ;	11

[1995] ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 1176 :
दिल्ली डेवलपमेंट अथारिटी बनाम **गृह स्थापना को-आपरेटिव ग्रुप हाउसिंग सोसायटी लिमिटेड** ; 10

[1970] ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 1986 =
(1969) 3 एस. सी. सी. 522 :
श्री हनुमान काटन मिल्स बनाम **टाटा एयर-क्राफ्ट लिमिटेड** ; 9

[1926] ए. आई. आर. 1926 प्रिवी कौंसिल 1 :
चिरंजीत सिंह बनाम **हर स्वरूप** । 10

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की प्रथम अपील सं. 316.

2014 के सिविल वाद सं. 25-बी में अष्टम् अपर जिला न्यायाधीश, दुर्ग द्वारा तारीख 23 फरवरी, 2017 को पारित निर्णय और डिक्री के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से –

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री अनिवाश चन्द साहू, एच. बी. अग्रवाल और (सुश्री) दीपाली पाण्डेय

अपील में निर्णय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार मिश्रा और न्यायमूर्ति (श्रीमती) विमला सिंह कपूर ने दिया ।

निर्णय – विलंब की माफी के लिए फाइल 2017 के अंतरिम आवेदन सं. 1 पर सुना गया ।

2. 2017 के अंतिरम आवेदन सं. 1 पर सम्यक् रूप से विचार करने के पश्चात् मंजूर किया जाता है । वर्तमान अपील फाइल करने में 5 दिन के विलंब को एतद्द्वारा माफ किया जाता है ।

3. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों की सहमति पर मामले को इस प्रक्रम पर ही अंतिम रूप से सुना जाता है ।

4. वर्तमान अपील 2014 के सिविल वाद सं. 25-बी में अष्टम्

अपर जिला न्यायाधीश, दुर्ग द्वारा तारीख 23 फरवरी, 2017 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसमें विचारण न्यायालय ने अधिदाय धनराशि के प्रतिदाय के लिए वादी/अपीलार्थी के वाद को खारिज किया है ।

5. अपीलार्थी सुनील जैन प्रत्यर्थी पीताम्बर साहू, धनेशरम साहू और विशाल राम साहू से भूमि का भावी क्रेता है । पक्षकारों के बीच विक्रय करार तारीख 8 अक्तूबर, 2011 को हुआ था और प्रत्यर्थी/प्रतिवादियों को 1,25,000/- रुपए की अधिदाय धनराशि संदत्त की गई थी ।

6. वादी के अनुसार उसने भूखंडों को विकसित करने और विक्रीत करने हेतु संपत्ति क्रय करने के लिए करार किया था । तथापि, करार होने के पश्चात् उसकी जानकारी में यह बात आई कि भूमि हरित पट्टी के लिए महा-योजना (मास्टर प्लान) के लिए आरक्षित है । चूंकि उक्त भूमि उसके लिए उपयोगी नहीं थी इसलिए वह इस भूमि को आगे क्रय करने का इच्छुक नहीं था और उसने प्रतिवादी से अधिदाय धनराशि वापस करने के लिए अनुरोध किया जिसे प्रतिवादी ने यह कहते हुए नकार दिया कि वह संपत्ति को विक्रीत करने के लिए तैयार है ।

7. अधिदाय धनराशि अथवा अग्रिम धनराशि के वापसी के किसी वाद में इस बारे में न्यायनिर्णयन की आवश्यकता नहीं है कि किस पक्षकार की ओर से अनुपालन में व्यतिक्रम किया गया है जब तक कि करार में समपहरण (जब्ती) का खंड उल्लिखित न हो । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **सतीश बत्रा** बनाम **सुधीर रावल**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि समपहरण को उचित ठहराने के लिए संविदा के खंडों में सही उल्लेख और स्पष्टता आवश्यक है और जंगम संपत्ति के क्रय के करार में समपहरण खंड तब लागू नहीं होगा जब संदाय केवल प्रतिफल के भागत: संदाय के रूप में किया गया है न कि वह अग्रिम धन के रूप में आशयित है ।

8. विचारण न्यायालय ने आक्षेपित निर्णय के पैरा 22 में स्पष्ट

---

[1] (2013) 1 एस. सी. सी. 345 = 2012 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5869.

निबंधनों में यह अभिनिर्धारित किया है कि संविदा में ऐसा कोई विबंधन नहीं है कि भावी क्रेताओं द्वारा संविदा के भंग की दशा में अधिदाय धनराशि समपहृत कर ली जाएगी । हमने करार प्रदर्श पी-1 का भी परिशीलन किया जिसमें केवल 6 खंड उल्लिखित हैं और जो दोनों पक्षकारों द्वारा सम्यक्त: हस्ताक्षरित है, जो अधिदाय धनराशि के समपहरण के लिए किसी खंड का उल्लेख किए बिना तारीख 8 अक्तूबर, 2011 को निष्पादित किया गया था । करार के खंड 2 में भावी विक्रेता के लिए "बयाना" अर्थात् अधिदाय धनराशि के रूप में संदत्त धनराशि के बारे में यह निर्देश है कि इसे विक्रय विलेख के रजिस्ट्रीकरण के समय विक्रय प्रतिफल में समायोजित किया जाएगा । अत: पक्षकारों का यह किसी भी प्रकार से आशय नहीं था कि करार के निष्पादन के समय भावी विक्रेता को इस प्रकार संदत्त राशि अग्रिम धन होगा न कि अधिदाय धन और ऐसा प्रमितत: इस कारण भी है कि करार में कोई समपहरण खंड सम्मिलित नहीं है ।

9. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अनेक मामलों में 'अधिदाय धनराशि' और 'अग्रिम धन' के बीच अंतर पर विचार किया गया है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **श्री हनुमान काटन मिल्स** बनाम **टाटा एयर-क्राफ्ट लिमिटेड**[1] वाले मामले में यह अभिधारित करने के लिए कतिपय सिद्धांत अधिकथित किए हैं कि जहां धनराशि 'अधिदाय' के रूप में संदत्त की गई है वहां क्या इसे 'अग्रिम धनराशि' के रूप में समझा जा सकता है और क्या विक्रेता इसको समपहृत करने का हकदार है । निर्णय का पैरा 21 इस प्रकार है :-

> "21. ऊपर उद्धृत विनिश्चयों के पुनर्विलोकन से 'अग्रिम' के संबंध में निम्नलिखित सिद्धांत सृजित होते हैं -
>
> (1) यह उस समय दिया जाना चाहिए जब संविदा पूरी होती है ।
>
> (2) यह इस बात की गारंटी होती है कि संविदा पूर्ण की

---

[1] ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 1986 = (1969) 3 एस. सी. सी. 522.

जाएगी अथवा दूसरे शब्दों में 'अग्रिम' संविदा को आबद्धकर करने के लिए दिया गया है ।

(3) यह उस संव्यवहार की क्रय-कीमत का भाग है जो आगे किया जाएगा ।

(4) यह वहां समपहृत किया जाएगा जहां संव्यवहार क्रेता के व्यतिक्रम या विफलता के कारण असफल होता है ।

(5) जब तक कि संविदा के निबंधनों में कोई प्रतिकूल बात उल्लिखित न हो वहां क्रेता द्वारा व्यतिक्रम करने पर विक्रेता अग्रिम धन को समपहृत करने का हकदार है ।"

10. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **दिल्ली डेवलपमेंट अथारिटी** बनाम **गृह स्थापना को-आपरेटिव ग्रुप हाउसिंग सोसायटी लिमिटेड**[1] वाले मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा **चिरंजीत सिंह** बनाम **हर स्वरूप**[2] वाले मामले में दिए गए विनिश्चयों का अनुसरण करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि इस प्रश्न पर विचार किया जाना है कि क्या प्रत्यर्थी सम्पूर्ण धनराशि को समपहृत करने के हकदार हैं, और क्या संविदा के अधीन ऐसी कोई विनिर्दिष्ट प्रसंविदा थी कि प्रत्यर्थी संविदा के अधीन संदत्त धनराशि को समपहृत करने के हकदार हैं । अत: जहां संविदा अपीलार्थी द्वारा किए गए व्यतिक्रम के कारण संविदा के भाग के रूप में विफल होती है वहां वे सम्पूर्ण धनराशि को समपहृत करने के हकदार हैं ।

11. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **वीडियोकान प्रापर्टीज लिमिटेड** बनाम **बालचन्द्र लेबोरेट्रीज**[3] वाले मामले में अग्रिम धन की प्रकृति की परीक्षा करते हुए यह मत व्यक्त किया था कि केवल करार में प्रयुक्त शब्द "अग्रिम धन" की प्रकृति का निर्धारण नहीं करेंगे । तथापि, यह देखा जाएगा कि वस्तुत: पक्षकारों का आशय क्या था और सम्बद्ध परिस्थितियां क्या थीं । यह अभिनिर्धारित किया गया कि अग्रिम धन

---

[1] ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 1176.

[2] ए. आई. आर. 1926 प्रिवी कौंसिल 1.

[3] ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1176 = (2004) 3 एस. सी. सी. 711.

क्रय धन के भागत: संदाय होने और संबंधित पक्षकार द्वारा संविदा के अनुपालन के लिए प्रतिभूति होने के दो प्रयोजनों को पूरा करता है ।

12. केवल करार में प्रयुक्त शब्दों द्वारा यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है कि शब्द रकम की प्रकृति का अवधारण करेंगे अपितु वस्तुत: पक्षकार के आशय पर विचार किया जाना चाहिए कि उसने 'अधिदाय धन' के रूप में किस बात का उल्लेख किया है और यह उल्लेख वस्तुत: कोई निक्षेप हो सकता है अथवा अग्रिम धन हो सकता है जो अन्तत: वास्तविक रूप में किसी अधिदाय या क्रय का भाग हो सकता है ।

13. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **सतीश बत्रा** (पूर्वोक्त) वाले मामले में इस विवाद्यक पर विचार करते हुए पैरा 15 और 16 में इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :-

> "15. अत: इस बारे में विधि स्पष्ट है कि अधिदाय धन के समपहरण को न्यायोचित ठहराने के लिए यह बात स्पष्ट और साफ होनी चाहिए कि वह धन संविदा के निबंधनों में "अग्रिम धन" है । अग्रिम धन उस समय संदत्त किया जाता है या दिया जाता है जब संविदा निष्पादित की जाती है और जमा कर्ता द्वारा इसके सम्यक् अनुपालन के लिए किसी गिरवी के रूप में जमा कर्ता द्वारा अननुपालन की स्थिति में समपहरण किया जाएगा । इस बारे में भिन्न स्थिति भी हो सकती है कि यदि विक्रेता संविदा के अनुपालन में विफल रहता है तब क्रेता दुगनी धनराशि भी प्राप्त कर सकता है यदि ऐसा उपबंधित है । इस बारे में यह भी विधि है कि क्रय-कीमत का भागत: संदाय तब तक समपहृत नहीं किया जा सकता जब तक कि यह संविदा के सम्यक् अनुपालन के लिए कोई गारंटी न हो । दूसरे शब्दों में, यदि संदाय केवल प्रतिफल के भागत: संदाय के प्रति किया जाता है और वह अग्रिम धन के रूप में आशयित नहीं है तब समपहरण खंड लागू नहीं होगा ।
>
> 16. हमारे द्वारा वर्तमान मामले में खंडों की परीक्षा करने पर यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि ऊपर उद्धृत खंड संविदा में उस

समय सम्मिलित किया गया था जब संविदा की गई थी । यह इस गारंटी को परिलक्षित करता है कि संविदा पूरी की जाएगी । दूसरे शब्दों में 'अग्रिम' संविदा को आबद्धकर करने के लिए दिया गया है जो कि क्रय-कीमत का एक भाग है जब संव्यवहार पूरा किया जाएगा और यह तब समपहृत होगा जब संव्यवहार क्रेता के व्यतिक्रम या विफलता के कारण पूर्ण नहीं होता है । तारीख 29 नवंबर, 2011 के करार में उल्लिखित खंडों के विरुद्ध अन्य कोई प्रतिकूल खंड नहीं है ।"

14. ऊपर अभिव्यक्त मत को वर्तमान मामले के तथ्यों को लागू करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि करार में ऐसा कोई विबंध नहीं है कि धनराशि संविदा के अनुपालन के लिए एक प्रतिभूति के रूप में संदत्त की गई है और क्रेता द्वारा संविदा के निबंधनों को देखते हुए व्यतिक्रम करने की दशा में किसी अधिदाय के रूप में इस प्रकार संदत्त धनराशि समपहृत होगी । अत: अधिदाय संविदा के अनुपालन के लिए प्रतिभूति के रूप में संदत्त नहीं किया गया था और यह विक्रय प्रतिफल के भाग के रूप में संदत्त किया गया था जो विक्रय विलेख के निष्पादन के समय समायोजित किया जाना था । अत: विक्रेता उच्चतम न्यायालय द्वारा **सतीश बत्रा** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अधिकथित विधि को दृष्टिगत करते हुए धनराशि को समपहृत करने का हकदार नहीं है और इसलिए विचारण न्यायालय ने वाद खारिज करके विधि की गंभीर गलती की है ।

15. परिणामत:, अपील मंजूर की जाती है । आक्षेपित निर्णय और डिक्री अपास्त की जाती है और इसके बजाय वादी का वाद मंजूर करते हुए यह डिक्री पारित की जाती है कि किसी ब्याज के बिना 1,25,000/- रुपए की अधिदाय धनराशि वापस की जाएगी । पक्षकार मुकदमेदारी में हुआ अपना-अपना खर्च स्वयं वहन करेंगे ।

16. तद्नुसार डिक्री तैयार की जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

मह.

फ़ेकन बाई (श्रीमती) और अन्य

बनाम

सुखदेव ध्रुव और अन्य

तारीख 5 दिसंबर, 2018

न्यायमूर्ति संजय के. अग्रवाल

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (1956 का 30) – धारा 5, 8 और 15 [सपठित मध्य प्रदेश भू-राजस्व अधिनियम, 1959 की धारा 164] – कृषि भू-संपत्ति – पुत्री को उत्तराधिकार – समुदाय में प्रचलित रूढ़ि के अनुसार उत्तराधिकार का दावा – मूल उत्तराधिकारियों द्वारा निचले न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध प्रथम या द्वितीय अपील न की जानी – तीसरे पक्षकार द्वारा अपील फाइल करके उनकी ओर से दलील दी जानी – चूंकि मूल पक्षकार द्वारा प्रचलित रूढ़ि को साबित नहीं किया गया है – अत: तीसरे पक्षकार की ओर से अपील में दी गई दलील स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है – अपील खारिज होने योग्य है ।

वाद संपत्ति का मालिक मूल रूप से जगन नाथ था जिसके दो पुत्र अर्थात् मूल वादी-समोदी और मूल प्रतिवादी सं. 1 उमेंद और एक पुत्री-समुन्दा बाई हैं । प्रतिवादी सं. 3 और 4 समुन्दा बाई की पुत्रियां हैं और प्रतिवादी सं. 2 लखन समुन्दा बाई का पति है । पक्षकारों का यह पक्षकथन है कि मूलत: भूमि जगन नाथ की थी । उसके जीवनकाल के दौरान वाद संपत्ति का विभाजन हो गया था और मूल वादी-समोदी को 1.39 हेक्टेयर भूमि दी गई थी तथा प्रतिवादी सं. 1 उमेंद को 1.17 हेक्टेयर भूमि दी गई थी और उसकी पत्नी परवत बाई के हक में 1.25 हेक्टेयर भूमि आरक्षित की गई थी, जिसकी मृत्यु 1985 में हो गई । उसकी मृत्यु के पश्चात् उस वाद संपत्ति के संबंध में विवाद उत्पन्न हुआ जो परवत बाई के लिए छोड़ी और आरक्षित की गई थी । मूल वादी-समोदी ने तारीख 23 अक्तूबर, 1990 को हक की घोषणा, विभाजन, कब्जे और अन्य बातों के साथ-साथ यह कहते हुए नुकसानी

सहित अन्त: लाभों के लिए वाद फाइल किया कि वह परवत बाई द्वारा छोड़ी गई संपत्ति में 1/2 भाग की हकदार है । इस भूमि का माप 1.2 हेक्टेयर है जो ग्राम कंपा, जिला बेमेतारा में स्थित है । उसने यह कहते हुए अपना दावा संस्थित किया कि उसका मामला हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (जिसे आगे संक्षेप में "अधिनियम, 1956" कहा गया है) द्वारा विनियमित होता है । विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् तारीख 21 सितंबर, 1998 के निर्णय और डिक्री द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए वाद डिक्री कर दिया कि वादी वाद संपत्ति में 1/2 की हकदार है क्योंकि समुन्दा बाई की मृत्यु वर्ष 1962 में हो गई थी और उस अवधि के दौरान मध्य प्रदेश भू-राजस्व संहिता, 1959 की असंशोधित धारा 164 लागू थी और इसलिए वह अपने पिता द्वारा छोड़ी गई संपत्ति में किसी अंश की हकदार नहीं है । प्रतिवादी सं. 1 उमेंद ने प्रथम अपील इस आधार पर प्रस्तुत की कि अधिनियम, 1956 में अन्तर्विष्ट उपबंध लागू नहीं होते हैं क्योंकि वे अपनी रूढ़ियों से विनियमित होते हैं और प्रथम अपील न्यायालय ने इस बात को स्वीकार न करते हुए अपील खारिज की है । प्रतिवादी सं. 1 ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित और असंतुष्ट होकर सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन यह द्वितीय अपील फाइल की थी जिसकी द्वितीय अपील के लंबन के दौरान मृत्यु हो गई और इस अपील में इस न्यायालय द्वारा विधि का एक सारभूत प्रश्न विरचित किया गया था जिसका उल्लेख आरंभिक पैरा में किया गया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – वादी का यह पक्षकथन है कि पक्षकार हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 द्वारा विनियमित होते हैं और इस बारे में विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित करते हुए यह स्वीकार किया है कि प्रतिवादी सं. 1 ने पक्षकारों के बीच विद्यमान उन रूढ़ियों को साबित करने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है जो उनके उत्तराधिकार को विनियमित करती हैं । अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि प्रतिवादी सं. 1 उमेंद के स्वयं के कथन के

सिवाय यह अभिनिर्धारित करने के लिए अभिलेख पर कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया है कि उनके बीच ऐसी कोई रूढ़ि विद्यमान है कि पुत्री अपने पिता की संपत्ति में भी अंश पाने की हकदार है । स्वर्गीय जगन नाथ की पुत्री समुन्दा बाई की वर्ष 1962 में मृत्यु हो गई थी और उसकी पुत्रियों-प्रतिवादी सं. 3 और 4 ने वाद का विरोध करने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की और इसलिए वाद एकपक्षीय विनिश्चित किया गया जिसमें विचारण न्यायालय ने वादी और प्रतिवादी सं. 1 के हक में 1/2 भाग मंजूर किया और उन्होंने संपत्ति में 1/2 भाग का दावा करने के लिए प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष अपील प्रस्तुत नहीं की और विचारण न्यायालय के आदेश को अंतिम बनने दिया और जब प्रथम अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री की पुष्टि की तब भी उन्होंने इस न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील प्रस्तुत नहीं की । केवल प्रतिवादी सं. 1 ने यह दावा करते हुए द्वितीय अपील प्रस्तुत की कि प्रतिवादी सं. 3 और 4 अर्थात् समुन्दा बाई की पुत्रियां परवत बाई द्वारा छोड़ी गई संपत्ति में 1/3 भाग की हकदार हैं और इस प्रकार प्रतिवादी सं. 3 और 4 ने विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को स्वीकार किया है जिसमें उन्हें वाद संपत्ति में कोई अंश नहीं दिया गया है और उन्होंने प्रथम अपील और द्वितीय अपील प्रस्तुत न करने का विनिश्चय किया इसलिए प्रतिवादी सं. 1 को जिसे वाद संपत्ति में 1/2 भाग प्राप्त हुआ था, यह कहने का कोई अधिकार नहीं है कि प्रतिवादी सं. 3 और 4 भी वाद संपत्ति में 1/3 भाग की हकदार हैं । प्रतिवादी सं. 1 जिसे वाद संपत्ति में 1/2 भाग प्राप्त हुआ है, प्रतिवादी सं. 3 और 4 की ओर से यह कहने का हकदार नहीं है और उन्होंने अपील प्रस्तुत न करके प्रतिवादी सं. 3 और 4 के सिवाय किसी अनुतोष के लिए अनुरोध नहीं किया है और वर्तमान प्रतिवादी व्यथित व्यक्ति नहीं है । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री पी. आर. पाटनकर द्वारा उद्धृत निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों को लागू नहीं होते हैं । उपर्युक्त विश्लेषण को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय को इस द्वितीय अपील में कोई बल प्रतीत नहीं होता है । विधि के सारभूत प्रश्न का उत्तर वादी के हक में और प्रतिवादी सं. 1 के विरुद्ध दिया जाता है । (पैरा 11 और 12)

प्रभेदित निर्णय

पैरा

[2014] ए. आई. आर. 2014 छत्तीसगढ़ 110 =
2014 (3) सी. जी. एल. जे. 590 :
श्रीमती बुताकी बाई और अन्य बनाम **सुखवती और अन्य** । 8

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2002 की द्वितीय अपील सं. 395.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री पी. आर. पाटनकर

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री अमित साहू और राहुल तमसकर

न्यायमूर्ति संजय के. अग्रवाल – प्रतिवादी सं. 1 के विधिक प्रतिनिधियों द्वारा प्रस्तुत इस द्वितीय अपील में अन्तर्वलित विधि का सारभूत प्रश्न और इस न्यायालय द्वारा विरचित और उत्तर दिए जाने के लिए सारभूत प्रश्न इस प्रकार है :–

> "क्या विद्वान् निचले न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में विधित: न्यायोचित हैं कि उत्तराधिकार के मामले में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के अधिनियमित किए जाने से पूर्व हिन्दुओं के उत्तराधिकार की सामान्य विधि समुन्दा बाई को उसके पिता की मृत्यु के पश्चात् कोई अंश पाने के लिए हकदार न बनाने हेतु प्रवृत्त होगी ?"

2. विधि के उपर्युक्त सारभूत प्रश्न के अवधारण के लिए आवश्यक तथ्य इस प्रकार हैं - सुविधा के लिए पक्षकारों को आगे विचारण न्यायालय के समक्ष वाद में उपदर्शित उनकी स्थिति के अनुसार निर्दिष्ट किया जाएगा ।

3. वाद संपत्ति का मालिक मूल रूप से जगन नाथ था जिसके दो पुत्र अर्थात् मूल वादी-समोदी और मूल प्रतिवादी सं. 1 उमेंद और एक पुत्री समुन्दा बाई हैं । प्रतिवादी सं. 3 और 4 समुन्दा बाई की पुत्रियां हैं

और प्रतिवादी सं. 2 लखन समुन्दा बाई का पति है । पक्षकारों का यह पक्षकथन है कि मूलत: भूमि जगन नाथ की थी । उसके जीवनकाल के दौरान वाद संपत्ति का विभाजन हो गया था और मूल वादी-समोदी को 1.39 हेक्टेयर भूमि दी गई थी तथा प्रतिवादी सं. 1 उमेंद को 1.17 हेक्टेयर भूमि दी गई थी और उसकी पत्नी परवत बाई के हक में 1.25 हेक्टेयर भूमि आरक्षित की गई थी, जिसकी मृत्यु 1985 में हो गई । उसकी मृत्यु के पश्चात् उस वाद संपत्ति के संबंध में विवाद उत्पन्न हुआ जो परवत बाई के लिए छोड़ी और आरक्षित की गई थी । मूल वादी-समोदी ने तारीख 23 अक्तूबर, 1990 को हक की घोषणा, विभाजन, कब्जे और अन्य बातों के साथ-साथ यह कहते हुए नुकसानी सहित अन्त: लाभों के लिए वाद फाइल किया कि वह परवत बाई द्वारा छोड़ी गई संपत्ति में 1/2 भाग की हकदार है । इस भूमि का माप 1.2 हेक्टेयर है जो ग्राम कंपा, जिला बेमेतारा में स्थित है । उसने यह कहते हुए अपना दावा संस्थित किया कि उसका मामला हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (जिसे आगे संक्षेप में "अधिनियम, 1956" कहा गया है) द्वारा विनियमित होता है ।

4. प्रतिवादी सं. 1 ने अन्य बातों के साथ-साथ यह कहते हुए अपना लिखित कथन फाइल किया कि वे आदिवासी होने के नाते अपनी रूढ़ियों द्वारा विनियमित होते हैं और इसलिए वादी, परवत बाई द्वारा छोड़ी गई वाद संपत्ति में 1/2 भाग की हकदार नहीं है ।

5. विचारण न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् तारीख 21 सितंबर, 1998 के निर्णय और डिक्री द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए वाद डिक्री कर दिया कि वादी वाद संपत्ति में 1/2 की हकदार है क्योंकि समुन्दा बाई की मृत्यु वर्ष 1962 में हो गई थी और उस अवधि के दौरान मध्य प्रदेश भू-राजस्व संहिता, 1959 की असंशोधित धारा 164 लागू थी और इसलिए वह अपने पिता द्वारा छोड़ी गई संपत्ति में किसी अंश की हकदार नहीं है ।

6. प्रतिवादी सं. 1 उमेंद ने प्रथम अपील इस आधार पर प्रस्तुत की

कि अधिनियम, 1956 में अन्तर्विष्ट उपबंध लागू नहीं होते हैं क्योंकि वे अपनी रूढ़ियों से विनियमित होते हैं और प्रथम अपील न्यायालय ने इस बात को स्वीकार न करते हुए अपील खारिज की है ।

7. प्रतिवादी सं. 1 ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री से व्यथित और असंतुष्ट होकर सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन यह द्वितीय अपील फाइल की थी जिसकी द्वितीय अपील के लंबन के दौरान मृत्यु हो गई और इस अपील में इस न्यायालय द्वारा विधि का एक सारभूत प्रश्न विरचित किया गया था जिसका उल्लेख आरंभिक पैरा में किया गया है ।

8. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने श्री पी. आर. पाटनकर ने यह दलील दी है कि दोनों निचले न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में पूर्ण रूप से गलत हैं कि पक्षकार 1956 के अधिनियम द्वारा विनियमित होते हैं जबकि वे अपनी रूढ़ियों द्वारा विनियमित होते हैं जिसमें पुत्री समुन्दा बाई भी 1/3 की हकदार है । उन्होंने यह भी दलील दी है कि विचारण न्यायालय वादी और प्रतिवादी सं. 1 को 1/2 अंश मंजूर करने में पूर्ण रूप से गलत था और इसलिए द्वितीय अपील मंजूर की जानी चाहिए । उन्होंने अपनी दलील के समर्थन में इस न्यायालय द्वारा **श्रीमती बुताकी बाई और अन्य** बनाम **सुखवती और अन्य**[1] वाले मामले में पारित निर्णय का अवलंब लिया है ।

9. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी सं. 1 (ए) के विद्वान् काउंसेल श्री अमित साहू ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी सं. 3 और 4 समुन्दा बाई की पुत्रियां हैं और वे विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित नहीं हुई हैं और उन्होंने प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष कोई अपील फाइल नहीं की है और उन्होंने विचारण न्यायालय के डिक्री आदेश अथवा प्रथम अपील न्यायालय की डिक्री को भी प्रश्नगत नहीं किया है । उन्होंने यह भी दलील दी है कि प्रतिवादी सं. 1 के पास जिसे पहले ही वाद संपत्ति में 1/2 भाग प्राप्त हो चुका है, अपील प्रस्तुत करने के लिए कोई वाद

---

[1] ए. आई. आर. 2014 छत्तीसगढ़ 110 = 2014 (3) सी. जी. एल. जे. 590.

हेतुक नहीं है क्योंकि वह व्यथित व्यक्ति नहीं है, इसलिए द्वितीय अपील खारिज किए जाने योग्य है ।

10. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और ऊपर उद्धृत परस्पर विरोधी दलीलों पर विचार किया और पूर्ण सतर्कता के साथ अभिलेख का परिशीलन किया ।

11. वादी का यह पक्षकथन है कि पक्षकार हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 द्वारा विनियमित होते हैं और इस बारे में विचारण न्यायालय ने अभिनिर्धारित करते हुए यह स्वीकार किया है कि प्रतिवादी सं. 1 ने पक्षकारों के बीच विद्यमान उन रूढ़ियों को साबित करने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है जो उनके उत्तराधिकार को विनियमित करती हैं । अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि प्रतिवादी सं. 1 उमेंद के स्वयं के कथन के सिवाय यह अभिनिर्धारित करने के लिए अभिलेख पर कोई साक्ष्य पेश नहीं किया गया है कि उनके बीच ऐसी कोई रूढ़ि विद्यमान है कि पुत्री अपने पिता की संपत्ति में भी अंश पाने की हकदार है । स्वर्गीय जगन नाथ की पुत्री समुन्दा बाई की वर्ष 1962 में मृत्यु हो गई थी और उसकी पुत्रियों-प्रतिवादी सं. 3 और 4 ने वाद का विरोध करने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की और इसलिए वाद एकपक्षीय विनिश्चित किया गया जिसमें विचारण न्यायालय ने वादी और प्रतिवादी सं. 1 के हक में 1/2 भाग मंजूर किया और उन्होंने संपत्ति में 1/2 भाग का दावा करने के लिए प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष अपील प्रस्तुत नहीं की और विचारण न्यायालय के आदेश को अंतिम बनने दिया और जब प्रथम अपील न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री की पुष्टि की तब भी उन्होंने इस न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील प्रस्तुत नहीं की । केवल प्रतिवादी सं.1 ने यह दावा करते हुए द्वितीय अपील प्रस्तुत की कि प्रतिवादी सं. 3 और 4 अर्थात् समुन्दा बाई की पुत्रियां परवत बाई द्वारा छोड़ी गई संपत्ति में 1/3 भाग की हकदार हैं और इस प्रकार प्रतिवादी सं. 3 और 4 ने विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को

स्वीकार किया है जिसमें उन्हें वाद संपत्ति में कोई अंश नहीं दिया गया है और उन्होंने प्रथम अपील और द्वितीय अपील प्रस्तुत न करने का विनिश्चय किया इसलिए प्रतिवादी सं. 1 को जिसे वाद संपत्ति में 1/2 भाग प्राप्त हुआ था, यह कहने का कोई अधिकार नहीं है कि प्रतिवादी सं. 3 और 4 भी वाद संपत्ति में 1/3 भाग की हकदार हैं । प्रतिवादी सं. 1 जिसे वाद संपत्ति में 1/2 भाग प्राप्त हुआ है, प्रतिवादी सं. 3 और 4 की ओर से यह कहने का हकदार नहीं है और उन्होंने अपील प्रस्तुत न करके प्रतिवादी सं. 3 और 4 के सिवाय किसी अनुतोष के लिए अनुरोध नहीं किया है और वर्तमान प्रतिवादी व्यथित व्यक्ति नहीं है । अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल श्री पी. आर. पाटनकर द्वारा उद्धृत निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों को लागू नहीं होते हैं ।

12. उपर्युक्त विश्लेषण को दृष्टिगत करते हुए मुझे इस द्वितीय अपील में कोई बल प्रतीत नहीं होता है । विधि के सारभूत प्रश्न का उत्तर वादी के हक में और प्रतिवादी सं. 1 के विरुद्ध दिया जाता है । यह द्वितीय अपील खारिज किए जाने योग्य है और तद्द्वारा खारिज की जाती है । पक्षकार अपना-अपना खर्चा स्वयं वहन करेंगे ।

13. तद्नुसार डिक्री बनाई जाए ।

अपील खारिज की गई ।

महः

मोहम्मद शफ़ीक

बनाम

भारत संघ और अन्य

तारीख 31 अगस्त, 2017

न्यायमूर्ति ताशी राबस्टन

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 21 [सपठित पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 5(3)] – पासपोर्ट के लिए आवेदन – भाई के विरुद्ध प्रतिकूल पुलिस रिपोर्ट के आधार पर पासपोर्ट जारी करने से इनकार – मात्र किसी नातेदार के विरुद्ध प्रतिकूल रिपोर्ट या टिप्पण के आधार पर आवेदक को पासपोर्ट जारी करने से इनकार करना – संविधान के अनुच्छेद 21 का भंग होना – आवेदक से संबंधित रिपोर्ट के आधार पर पासपोर्ट जारी करने या न करने का निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए ।

याची द्वारा फाइल लिखित पक्षकथन से संक्षेप में ये तथ्य उपदर्शित होते हैं कि उसने फाइल सं. जे. एम. 1068493125815 द्वारा अपने हक में पासपोर्ट जारी करने के लिए आवेदन किया था और वह आवेदन करने के पश्चात् कई बार पासपोर्ट कार्यालय, गांधी नगर, जम्मू गया था तथापि, हर बार उसे यह बताया गया कि पुलिस रिपोर्ट नहीं आई है । इसके पश्चात् याची अपने मामले में पुलिस/सी. आई. डी. सत्यापन के लिए कार्यवाही कराने हेतु और मामला अग्रेषित कराने के लिए प्रत्यर्थी सं. 5 और 6 से मिला तथापि, याची के अनुसार वे अपने कानूनी दायित्वों/कर्तव्यों का निर्वहन करने में विफल रहे जिससे याची विदेश के लिए पासपोर्ट प्राप्त करने से वंचित रहा । याची ने वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से अपने हक में स्थायी पासपोर्ट जारी करने के लिए प्रत्यर्थियों को निदेश करने वाली परमादेश रिट जारी करने के लिए अनुरोध किया है । रिट याचिका में तद्नुसार आदेश पारित करते हुए,

अभिनिर्धारित – याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि मात्र इस आधार पर कि नातेदार के विरुद्ध प्रतिकूल रिपोर्ट है, याची को भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन गारंटीकृत उसके संवैधानिक

अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता । प्रत्यर्थी सं. 3 पासपोर्ट अधिकारी, क्षेत्रीय परिवहन कार्यालय, जम्मू द्वारा याची को तारीख 23 जून, 2015 को भेजी गई संसूचना के परिशीलन मात्र से यह प्रकट होता है कि याची के मामले में पुलिस अधीक्षक, राजौरी के कार्यालय से प्राप्त प्रतिकूल पुलिस रिपोर्ट के आधार पर पासपोर्ट जारी करने की सिफारिश नहीं की गई थी । इस बारे में विधि सुस्थापित है कि याची के नातेदार द्वारा अपराध किए जाने पर याची को दंडित नहीं किया जाना चाहिए । अत: प्रत्यर्थियों द्वारा याची के हक में पासपोर्ट जारी न करना प्रथमदृष्ट्या ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन दिए गए मूल अधिकारों का भंग है । ऊपर उल्लिखित कारणों से प्रत्यर्थी सं. 4 और 6 को यह निदेश देने के साथ इस रिट याचिका का निपटान किया जाता है कि वे याची के मामले पर याची के नातेदार के विरुद्ध अभिलिखित प्रतिकूल रिपोर्ट से प्रभावित हुए बिना वस्तुपरक रूप से विचार करें और पासपोर्ट अधिकारी, जम्मू, प्रत्यर्थी सं. 3 को याची के व्यक्तिगत आचरण और क्रियाकलापों को दृष्टिगत करते हुए समुचित रिपोर्ट भेजें । उपर्युक्त प्रत्यर्थी अपनी कोई राय गठित करने से पूर्व याची को सुनवाई का अवसर देंगे । प्रत्यर्थी सं. 4 से 6 इस आदेश की प्रमाणित प्रति के प्राप्त होने की तारीख से 4 सप्ताह की अवधि के भीतर कार्यवाही करेंगे । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 3 दो सप्ताह की अवधि के भीतर प्रत्यर्थी सं. 4 से 6 द्वारा भेजी गई रिपोर्ट के आधार पर याची के मामले में कार्यवाही करेगा । (पैरा 8, 9, 10 और 12)

अनुसरित निर्णय

		पैरा
[2016]	2016 की रिट याचिका सं. 1647, तारीख 10 अप्रैल, 2017 को विनिश्चित : **अब्दुल वहीद शेख और अन्य** बनाम **जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्य** ;	11
[2014]	2014 की रिट याचिका सं. 339, तारीख 17 दिसंबर, 2016 को विनिश्चित : **गुलाम रसूल और एक अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	11

[2013] 2013 की मूल रिट याचिका सं. 475, तारीख 31 अगस्त, 2015 को विनिश्चित :
जैतून अख्तर शेख बनाम **भारत संघ और अन्य ।** 11

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2016 की मूल रिट याचिका सं. 10.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री आर. पी. शर्मा

प्रत्यर्थियों की ओर से सुश्री सिंधु शर्मा और डब्ल्यू. एस. नारगाल

न्यायमूर्ति ताशी राबस्टन – याची ने वर्तमान रिट याचिका के माध्यम से अपने हक में स्थायी पासपोर्ट जारी करने के लिए प्रत्यर्थियों को निदेश करने वाली परमादेश रिट जारी करने के लिए अनुरोध किया है ।

2. याची द्वारा फाइल लिखित पक्षकथन से संक्षेप में ये तथ्य उपदर्शित होते हैं कि उसने फाइल सं. जे. एम. 1068493125815 द्वारा अपने हक में पासपोर्ट जारी करने के लिए आवेदन किया था और वह आवेदन करने के पश्चात् कई बार पासपोर्ट कार्यालय, गांधी नगर, जम्मू गया था तथापि, हर बार उसे यह बताया गया कि पुलिस रिपोर्ट नहीं आई है । इसके पश्चात् याची अपने मामले में पुलिस/सी. आई. डी. सत्यापन के लिए कार्यवाही कराने हेतु और मामला अग्रेषित कराने के लिए प्रत्यर्थी सं. 5 और 6 से मिला तथापि, याची के अनुसार वे अपने कानूनी दायित्वों/कर्तव्यों का निर्वहन करने में विफल रहे जिससे याची विदेश के लिए पासपोर्ट प्राप्त करने से वंचित रहा ।

3. यह दलील दी गई है कि प्रत्यर्थी सं. 3 अर्थात् पासपोर्ट अधिकारी, गांधी नगर, जम्मू ने तारीख 23 जून, 2015 की अपनी संसूचना द्वारा याची को यह सूचित किया कि पुलिस सत्यापन रिपोर्ट के अनुसार पासपोर्ट की मंजूरी के लिए उसका मामला प्रत्यर्थी सं. 4 से 6 द्वारा अग्रेषित नहीं किया गया है और उसे यह सलाह दी गई कि वह कतिपय स्पष्टीकरणों के लिए सी. आई. डी. मुख्यालय जाए ।

4. प्रत्यर्थियों द्वारा पासपोर्ट जारी न करने की कार्रवाई से व्यथित होकर याची ने वर्तमान रिट याचिका फाइल करके इस न्यायालय की

शरण ली है ।

5. सूचना जारी किए जाने पर प्रत्यर्थी सं. 4 से 6 के कर्मचारियों ने यह कहते हुए वर्तमान रिट याचिका का जवाब फाइल किया कि ज्येष्ठ पुलिस अधीक्षक, राजौरी के कार्यालय से प्राप्त पुलिस रिपोर्ट के निबंधनों में याची का भाई अर्थात् मोहम्मद सादिक तारीख 5 अगस्त, 2002 को उग्रवादियों में शामिल हो गया है और वह अवैध रूप से पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर चला गया है और इस कारण से पासपोर्ट की मंजूरी के लिए याची के मामले को अनुमोदित नहीं किया गया है और प्रत्यर्थी सं. 3 के कार्यालय को पासपोर्ट जारी करने की सिफारिश नहीं की गई है ।

6. इसके प्रतिकूल याची के काउंसेल ने यह दलील दी है कि याची न तो किसी राष्ट्र विरोधी क्रियाकलाप में अन्तर्वलित है और न ही किसी दांडिक मामले में और इसलिए उसे पासपोर्ट जारी करने से इनकार करना भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन उसे गारंटीकृत मूल अधिकारों से वंचित करना है । पासपोर्ट अधिनियम, 1967 की धारा 5 की उपधारा (3) यह परिकल्पित करती है कि पासपोर्ट के आवेदन पर प्राधिकारी कारणों के संक्षिप्त कथन का लिखित में पृष्ठांकन/उल्लेख करेगा जबकि याची के मामले में ऐसा कोई कारण अभिलिखित नहीं किया गया है ।

7. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना गया । रिट अभिलेख का परिशीलन किया गया और दी गई दलीलों पर विचार किया गया ।

8. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि मात्र इस आधार पर कि नातेदार के विरुद्ध प्रतिकूल रिपोर्ट है, याची को भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन गारंटीकृत उसके संवैधानिक अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता ।

9. प्रत्यर्थी सं. 3 पासपोर्ट अधिकारी, क्षेत्रीय परिवहन कार्यालय, जम्मू द्वारा याची को तारीख 23 जून, 2015 को भेजी गई संसूचना के परिशीलन मात्र से यह प्रकट होता है कि याची के मामले में पुलिस अधीक्षक, राजौरी के कार्यालय से प्राप्त प्रतिकूल पुलिस रिपोर्ट के आधार पर पासपोर्ट जारी करने की सिफारिश नहीं की गई थी ।

10. इस बारे में विधि सुस्थापित है कि याची के नातेदार द्वारा

अपराध किए जाने पर याची को दंडित नहीं किया जाना चाहिए । अत: प्रत्यर्थियों द्वारा याची के हक में पासपोर्ट जारी न करना प्रथमदृष्ट्या ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन दिए गए मूल अधिकारों का भंग है ।

11. ऐसा ही मत विभिन्न मामलों में समन्वय न्यायपीठ द्वारा व्यक्त किया गया है । इस न्यायपीठ ने भी **जैतून अख्तर शेख** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में और **अब्दुल वहीद शेख और अन्य** बनाम **जम्मू और कश्मीर राज्य और अन्य**[2] तथा **गुलाम रसूल और एक अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[3] वाले मामलों में भी समान मत व्यक्त किया गया है ।

12. ऊपर उल्लिखित कारणों से प्रत्यर्थी सं. 4 और 6 को यह निदेश देने के साथ इस रिट याचिका का निपटान किया जाता है कि वे याची के मामले पर याची के नातेदार के विरुद्ध अभिलिखित प्रतिकूल रिपोर्ट से प्रभावित हुए बिना वस्तुपरक रूप से विचार करें और पासपोर्ट अधिकारी, जम्मू, प्रत्यर्थी सं. 3 को याची के व्यक्तिगत आचरण और क्रियाकलापों को दृष्टिगत करते हुए समुचित रिपोर्ट भेजें । उपर्युक्त प्रत्यर्थी अपनी कोई राय गठित करने से पूर्व याची को सुनवाई का अवसर देंगे । प्रत्यर्थी सं. 4 से 6 इस आदेश की प्रमाणित प्रति के प्राप्त होने की तारीख से 4 सप्ताह की अवधि के भीतर कार्यवाही करेंगे । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 3 दो सप्ताह की अवधि के भीतर प्रत्यर्थी सं. 4 से 6 द्वारा भेजी गई रिपोर्ट के आधार पर याची के मामले में कार्यवाही करेगा ।

13. उपर्युक्त निबंधनों में संबंधित प्रकीर्ण आवेदनों के साथ इस रिट याचिका का निपटान किया जाता है ।

रिट याचिका में तद्नुसार आदेश पारित किया गया ।

महः

---

[1] 2013 की मूल रिट याचिका सं. 475, तारीख 31 अगस्त, 2015 को विनिश्चित.

[2] 2016 की रिट याचिका सं. 1647, तारीख़ 10 अप्रैल, 2017 को विनिश्चित.

[3] 2014 की रिट याचिका सं. 339, तारीख़ 17 दिसंबर, 2016 को विनिश्चित.

(2019) 1 सि. नि. प. 516 पंजाब-हरियाणा

बालक राम उर्फ **काका राम**

बनाम

करनैल सिंह और अन्य

तारीख 6 मार्च, 2018

न्यायमूर्ति अमित रावल

भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 (1925 का 39) – धारा 63(ग) – व्यादेश के लिए वाद – विल के आधार पर मालिकाना हक़ का दावा – विल के निष्पादन की शर्तें पूरी न होना – कानूनी उपबंधों का अननुपालन – ऐसी त्रुटिपूर्ण विल के आधार पर वाद डिक्री नहीं किया जा सकता – परिणामत: संपत्ति वसीयतकर्ता के नैसर्गिक वारिसों को न्यागत होगी ।

अपीलार्थी-वादी द्वारा यह नियमित द्वितीय अपील तथ्यों और विधि के उन निष्कर्षों के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा वाद-संपत्ति अर्थात् पुरानी इन्दिरा कालोनी, मनी मजरा, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, चंडीगढ़ स्थित मकान सं. 27 के एक कक्ष के कब्जे के लिए और स्थायी व्यादेश के लिए फाइल किया गया वाद खारिज किया गया है और जिसमें प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों के विरुद्ध व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष के अनुरोध के साथ-साथ प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों द्वारा अवैध और अवैधानिक रूप से बलपूर्वक कब्जा न लेने और हस्तक्षेप न करने के लिए भी अनुरोध किया गया था । विचारण न्यायालय द्वारा वाद खारिज किया गया था और निचले अपील न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की गई थी । विचारण न्यायालय ने इस आधार पर वाद खारिज कर दिया कि वादी ने मूल विल अभिलेख पर पेश नहीं की और उसके द्वारा निचले अपील न्यायालय के समक्ष फाइल की गई अपील भी खारिज कर दी गई थी । इस न्यायालय ने तारीख 19 जनवरी, 2016 के आदेश द्वारा 2014 की नियमित द्वितीय अपील सं. 4139 में मामला निचले अपील न्यायालय

को अतिरिक्त साक्ष्य लेने की स्वतंत्रता के साथ नए सिरे से न्यायनिर्णयन के लिए प्रतिप्रेषित किया था । अपीलार्थी-वादी ने उक्त आदेश के अनुपालन में मूल विल प्रस्तुत की और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 68 के उपबंधों के अनुपालन के प्रयोजन के लिए साक्षी अर्थात् बलजीत कुमार पुत्र ओम प्रकाश की परीक्षा भी कराई, तथापि, निचले अपील न्यायालय ने अपील खारिज कर दी । इस पृष्ठभूमि में वर्तमान द्वितीय अपील फाइल की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – निस्संदेह अपीलार्थी-वादी ने साक्षियों की परीक्षा कराकर विल को साबित करने का प्रयत्न किया है । भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63(ग) के उपबंधों का अनुपालन नहीं किया गया है । अधिनियम के उपर्युक्त उपबंध तीन प्रास्थितियों को परिकल्पित करते हैं – पहली परिस्थिति यह है कि विल दो या अधिक साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित की जाएगी और उनमें से प्रत्येक साक्षी की उपस्थिति में वसीयतकर्ता विल पर अपने हस्ताक्षर करेगा या अपना चिह्न लगाएगा या वह उस पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अपनी उपस्थिति में और अपने निदेशानुसार हस्ताक्षर कराएगा या वह अपने हस्ताक्षर या चिह्न की वैयक्तिक जानकारी वसीयतकर्ता से प्राप्त करेगा या ऐसे अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर कराएगा ; और तीसरी स्थिति यह है कि प्रत्येक साक्षी वसीयतकर्ता की उपस्थिति में हस्ताक्षर करेगा । तथापि, वर्तमान मामले में वसीयतकर्ता द्वारा निदेश के सिवाय या वसीयतकर्ता से अपने हस्ताक्षर की वैयक्तिक अभिस्वीकृति के सिवाय ही उपर्युक्त उपबंध का अनुपालन किया गया था । इन चीजों की अनुपस्थिति में उपर्युक्त उपबंधों का अनुपालन नहीं हुआ है । अत: न्यायालय के मतानुसार विल विधि के अनुसार साबित नहीं हुई है । इसके अभाव में यह कहा जा सकता है कि चूंकि तेजा सिंह की निर्वसीयती मृत्य हो गई थी इसलिए संपत्ति नैसर्गिक उत्तराधिकार द्वारा सभी विधिक वारिसों को न्यागत होगी । ऊपर अभिव्यक्त मत को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय को आक्षेपाधीन निष्कर्षों में कोई अवैधता और अनुचितता

प्रतीत नहीं होती है और ये निष्कर्ष मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के मूल्यांकन पर आधारित हैं और इसलिए वर्तमान अपील के न्यायनिर्णयन के लिए किसी भी प्रकार से विधि का कोई सारभूत प्रश्न उद्भूत नहीं हुआ है । (पैरा 7, 8, 9, 10 और 11)

अवलंबित निर्णय

पैरा

[2003] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 761 =
2003 (1) आर. सी. आर. (सिविल) 409 :
जानकी नारायण भोइर बनाम **नारायण नामदेव कदम** । 9

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2017 की नियमित द्वितीय अपील सं. 360.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री आर. एस. नारंग

प्रत्यर्थियों की ओर से –

न्यायमूर्ति अमित रावल – अपीलार्थी-वादी द्वारा यह नियमित द्वितीय अपील तथ्यों और विधि के उन निष्कर्षों के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा वाद-संपत्ति अर्थात् पुरानी इन्दिरा कालोनी, मनी मजरा, राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, चंडीगढ़ स्थित मकान सं. 27 के एक कक्ष के कब्जे के लिए और स्थायी व्यादेश के लिए फाइल किया गया वाद खारिज किया गया है और जिसमें प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों के विरुद्ध व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष के अनुरोध के साथ-साथ प्रत्यर्थी-प्रतिवादियों द्वारा अवैध और अवैधानिक रूप से बलपूर्वक कब्जा न लेने और हस्तक्षेप न करने के लिए भी अनुरोध किया गया था । विचारण न्यायालय द्वारा वाद खारिज किया गया था और निचले अपील न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की गई थी ।

2. अपीलार्थी-वादी की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री आर.

एस. नारंग ने यह दलील दी है कि वादी ने उपर्युक्त उल्लिखित आधार पर यह कहते हुए वाद संस्थित किया था कि वाद-संपत्ति वादी के पिता और प्रतिवादी सं. 1 अर्थात् तेजराम की है और इस संपत्ति में खसरा सं. 52/26/1/27(0-4), खेवट सं. 437, खतौनी सं. 506 जो मनी मजरा राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, चंडीगढ़ में स्थित है, सम्मिलित है । उक्त भूमि के ऊपर वादी के पिता ने अपने जीवनकाल के दौरान खसरा सं. 27, पुराना इन्दिरा कालोनी, क्षेत्र, चंडीगढ़ के ऊपर एक मकान निर्मित किया था और वादी के पिता ने तारीख 18 जून, 1997 को एक विल निष्पादित की थी जिसके द्वारा उपर्युक्त मकान अपीलार्थी-वादी और उसके भाई सतपाल के हक में वसीयत कर दिया था ; दूसरे शब्दों में करनैल सिंह और अन्य बच्चों को उक्त मकान की विरासत नहीं दी गई थी । प्रतिवादी ने केवल दो दिनों के अंदर चंडीगढ़ प्रशासन द्वारा उसका मकान ध्वस्त करा दिया तथापि, वादी ने उपर्युक्त वाद फाइल करने की आवश्यकता को देखते हुए परिसर खाली नहीं किया ।

3. विचारण न्यायालय ने इस आधार पर वाद खारिज कर दिया कि वादी ने मूल वसीयत अभिलेख पर पेश नहीं की और उसके द्वारा निचले अपील न्यायालय के समक्ष फाइल की गई अपील भी खारिज कर दी गई थी ।

4. इस न्यायालय ने तारीख 19 जनवरी, 2016 के आदेश द्वारा 2014 की नियमित द्वितीय अपील सं. 4139 में मामला निचले अपील न्यायालय को अतिरिक्त साक्ष्य लेने की स्वतंत्रता के साथ नए सिरे से न्यायनिर्णयन के लिए प्रतिप्रेषित किया था । अपीलार्थी-वादी ने उक्त आदेश के अनुपालन में मूल वसीयत प्रस्तुत की और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 68 के उपबंधों के अनुपालन के प्रयोजन के लिए साक्षी अर्थात् बलजीत कुमार पुत्र ओम प्रकाश की परीक्षा भी कराई, तथापि, निचले अपील न्यायालय ने अपील खारिज कर दी । इस पृष्ठभूमि में वर्तमान द्वितीय अपील फाइल की गई है ।

5. उन्होंने यह भी दलील दी है कि निचले अपील न्यायालय ने इस आधार पर विल को नामंजूर करने में अवैधता और अनुचितता कारित की है कि साक्षी ने विल की सही प्रविष्टियां नहीं बताई हैं जबकि तारीख 18

जून, 1997 की विल में सुस्पष्ट रूप से तारीख 18 जुलाई, 1998 उल्लिखित थी । साक्षी द्वारा इस पहलू की इस कारण से अनदेखी की गई थी कि अत्यधिक समय बीत चुका था और इसलिए उसे निश्चित तारीख याद नहीं रही थी । अभिलेख पर यह भी साबित हो गया है कि उसके भाई ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि पिता द्वारा अपीलार्थी और उसके भाई सतपाल के हक में उपर्युक्त मकान एक विल निष्पादित करके वसीयत कर दिया गया था । यदि इन सभी तथ्यों का एक साथ परिशीलन किया जाए तो इसके परिणामस्वरूप वाद डिक्री किया जाना चाहिए था किन्तु भ्रमित होते हुए और साक्ष्य का सही मूल्यांकन न करते हुए अनुचितता बरती गई है । उन्होंने यह भी दलील दी है कि चूंकि चंडीगढ़ में संपत्ति का विभाजन अनुज्ञात नहीं है इसलिए निचले अपील न्यायालय का पक्षकारों को विभाजन के उपचार की स्वतंत्रता देने संबंधी मत विधि का सही मूल्यांकन नहीं है ।

6. मैंने अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल को सुना और निचले न्यायालयों के निर्णयों और डिक्रियों का मूल्यांकन किया और मेरा यह मत है कि श्री नारंग द्वारा दी गई दलीलों में कोई बल और सार नहीं है ।

7. निस्संदेह अपीलार्थी-वादी ने साक्षियों की परीक्षा कराकर विल को साबित करने का प्रयत्न किया है । भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 की धारा 63(ग) के उपबंधों का अनुपालन नहीं किया गया है । अधिनियम की धारा 63 इस प्रकार है :-

> "63. **विशेषाधिकार रहित विलों का निष्पादन** - प्रत्येक वसीयतकर्ता, जो किसी अभियान में नियोजित या वास्तविक लड़ाई में लगा हुआ सैनिक या इस प्रकार नियोजित या लगा हुआ वायु सैनिकों या समुद्र पर कोई जहाज़ी नहीं है अपने विल निम्नलिखित नियमों के अनुसार निष्पादित करेगा -
>
> (क) वसीयतकर्ता विल पर अपने हस्ताक्षर करेगा या अपना चिह्न लगाएगा या उस पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी उपस्थिति में और उसके निदेशानुसार हस्ताक्षर किया

जाएगा ;

(ख) वसीयतकर्ता के हस्ताक्षर या चिह्न या उसके लिए हस्ताक्षर करने वाले व्यक्ति के हस्ताक्षर ऐसे किए जाएंगे या लगाए जाएंगे कि उससे यह प्रकट हो कि उसके द्वारा लेख को विल के रूप में प्रभावी करने का आशय था ;

(ग) विल को ऐसे दो या अधिक साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित किया जाएगा, जिसमें से प्रत्येक ने वसीयतकर्ता को विल पर हस्ताक्षर करते हुए या चिह्न लगाते हुए देखा है या वसीयतकर्ता की उपस्थिति में और उसके निदेशानुसार किसी अन्य व्यक्ति को विल पर हस्ताक्षर करते हुए देखा है या वसीयतकर्ता से उसके हस्ताक्षर या चिह्न की या ऐसे अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर की वैयक्तिक अभिस्वीकृति प्राप्त की है ; और प्रत्येक साक्षी वसीयतकर्ता की उपस्थिति में विल पर हस्ताक्षर करेगा किन्तु यह आवश्यक नहीं होगा कि एक से अधिक साक्षी एक ही समय पर उपस्थित हों और अनुप्रमाणन का कोई विशेष प्ररूप आवश्यक नहीं होगा ।"

8. अधिनियम के उपर्युक्त उपबंध तीन प्रास्थितियों को परिकल्पित करते हैं – पहली परिस्थिति यह है कि विल दो या अधिक साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित की जाएगी और उनमें से प्रत्येक साक्षी की उपस्थिति में वसीयतकर्ता विल पर अपने हस्ताक्षर करेगा या अपना चिह्न लगाएगा या वह उस पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अपनी उपस्थिति में और अपने निदेशानुसार हस्ताक्षर कराएगा या वह अपने हस्ताक्षर या चिह्न की वैयक्तिक जानकारी वसीयतकर्ता से प्राप्त करेगा या ऐसे अन्य व्यक्ति के हस्ताक्षर कराएगा ; और तीसरी स्थिति यह है कि प्रत्येक साक्षी वसीयतकर्ता की उपस्थिति में हस्ताक्षर करेगा ।

9. तथापि, वर्तमान मामले में वसीयतकर्ता द्वारा निदेश के सिवाय या वसीयतकर्ता से अपने हस्ताक्षर की वैयक्तिक अभिस्वीकृति के सिवाय ही उपर्युक्त उपबंध का अनुपालन किया गया था । इन चीजों की

अनुपस्थिति में उपर्युक्त उपबंधों का अनुपालन नहीं हुआ है । मेरे उपर्युक्त मत की माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **जानकी नारायण भोइर** बनाम **नारायण नामदेव कदम**[1] वाले मामले में अभिव्यक्त मत से पुष्टि होती है ।

10. अत: मेरे मतानुसार विल विधि के अनुसार साबित नहीं हुई है । इसके अभाव में यह कहा जा सकता है कि चूंकि तेजा सिंह की निर्वसीयती मृत्य हो गई थी इसलिए संपत्ति नैसर्गिक उत्तराधिकार द्वारा सभी विधिक वारिसों को न्यागत होगी ।

11. ऊपर अभिव्यक्त मत को दृष्टिगत करते हुए मुझे आक्षेपाधीन निष्कर्षों में कोई अवैधता और अनुचितता प्रतीत नहीं होती है और ये निष्कर्ष मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के मूल्यांकन पर आधारित हैं और इसलिए वर्तमान अपील के न्यायनिर्णयन के लिए किसी भी प्रकार से विधि का कोई सारभूत प्रश्न उद्भूत नहीं हुआ है ।

12. अपील में अन्य कोई दलील नहीं दी गई है ।

13. परिणामत: अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

महं.

---

[1] ए. आई. आर. 2003 एस. सी. 761 = 2003 (1) आर. सी. आर. (सिविल) 409.

(2019) 1 सि. नि. प. 523 पंजाब-हरियाणा

लाभ सिंह

बनाम

पाल सिंह और अन्य

तारीख 27 नवंबर, 2018

न्यायमूर्ति राज मोहन सिंह

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 22, नियम 4 और आदेश 1, नियम 10 – मूल विक्रेता की मृत्यु के पश्चात् विक्रय करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद – विधिक वारिसों को पक्षकार बनाया जाना – यदि संहिता के आदेश 22, नियम 4 के अधीन विधिक वारिसों को पक्षकार बनाया जाता है तो वे मूल विक्रेता द्वारा लिए गए आधार से बाहर नहीं जा सकते – तथापि, यदि उन्हें संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन पक्षकार बनाया जाता है तो वे अपनी वैयक्तिक क्षमता के आधार पर अपना स्वयं का आधार लेने के लिए हक़दार होंगे ।

यहां मामले के कतिपय तथ्यों का जो सुसंगत हैं, उल्लेख किया जाता है । वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 ने तारीख 4 अप्रैल, 2014 के विक्रय करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन के आधार पर कब्जे के लिए एक वाद फाइल किया था । यह विक्रय करार माटू सिंह द्वारा वादी के हक में 19 कैनाल 12 मरला माप की भूमि के जिसका ब्यौरा वादपत्र में दिया गया है, संबंध में निष्पादित किया गया था । वाद इन प्रकथनों के साथ फाइल किया गया था कि माटू सिंह ने वादी को यह बताया था कि उसने गांव के कुछ व्यक्तियों से ऋण लिया था जिसके लिए गुरदीप सिंह नामक व्यक्ति ने कुछ सादा स्टाम्प पत्रों पर उसके हस्ताक्षर लिए थे और कूटरचित विक्रय करार तैयार कर लिया है । माटू सिंह के विरुद्ध सिविल न्यायालय में उक्त करार के आधार पर विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए एक वाद फाइल किया गया था । माटू सिंह ने यह बताया था कि वह उक्त व्यक्तियों से समझौता करना चाहता है और उसने वादी के हक में अपनी संपत्ति विक्रीत करने का प्रस्ताव किया । वादी ने मृतक माटू

सिंह का निकट का नातेदार होने के कारण उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया । वादी ने माटू सिंह की ओर से न्यायालय में मांगपत्र (डिमांड ड्राफ़्ट) सं. 367294 द्वारा 19 लाख 50 हजार रुपए की धनराशि संदत्त की थी और उक्त वाद में समझौता हो गया था । माटू सिंह ने वादी को यह भी बताया था कि उसने कुछ अन्य व्यक्तियों से भी ऋण लिया था और अपनी संपत्ति का कुछ भाग बंधक किया था और उक्त संपत्ति के मोचन के लिए माटू सिंह ने पुन: वादी से संपर्क किया और यह पूछा कि क्या वह उसके ऋण को चुकाना चाहता है । माटू सिंह ने वादी से संपर्क करके वादी के हक में अपनी भूमि विक्रीत करने की सहमति जतायी जिसके लिए वादी तैयार हो गया और 19 कैनाल 12 मरला माप की भूमि के लिए 31 लाख 25 हजार रुपए एकड़ की दर से तारीख 4 अप्रैल, 2014 को विक्रय करार निष्पादित किया । वादी ने तारीख 4 अप्रैल, 2014 को 26 लाख रुपए की धनराशि का संदाय किया था जिसमें से 19 लाख 50 हजार रुपए की धनराशि मांगपत्र के जरिए संदत्त की गई थी और शेष 6 लाख 50 हजार रुपए की धनराशि माटू सिंह को नकद संदत्त की गई थी । तारीख 4 अप्रैल, 2014 के विक्रय करार के अनुसार वादी को माटू सिंह को तारीख 30 नवंबर, 2014 को या उससे पूर्व 38 लाख रुपए का संदाय करना था और विक्रय विलेख तारीख 8 जून, 2015 तक निष्पादित किया जाना था । माटू सिंह ने पुन: तारीख 12 नवंबर, 2014 को साक्षियों की उपस्थिति में 20 लाख रुपए की धनराशि प्राप्त की थी और करार के पृष्ठ भाग पर रसीद के रूप में इस आशय का पृष्ठांकन भी किया था । तारीख 26 नवंबर, 2014 को माटू सिंह को साक्षियों की उपस्थिति में पुन: 18 लाख रुपए की धनराशि संदत्त की गई थी और इसकी प्राप्ति के सबूत के रूप में माटू सिंह ने करार के पृष्ठ भाग पर पृष्ठांकन किया था । इस प्रकार से माटू सिंह (अब मृतक) ने वादी से अग्रिम धन के रूप में 64 लाख रुपए की धनराशि प्राप्त की थी । चूंकि माटू सिंह की तारीख 9 जनवरी, 2015 को मृत्यु हो गई और चूंकि प्रतिवादी मृतक माटू सिंह के विधिक वारिस हैं और उन्हें मृतक माटू सिंह की संपदा विरासत में मिली है इसलिए प्रतिवादियों के विरुद्ध माटू सिंह के विधिक वारिस होने के नाते वाद फाइल किया गया था । आवेदक/प्रतिवादी सं. 3 ने यह पुनरीक्षण आवेदन सिविल न्यायाधीश

(ज्येष्ठ खंड), एस. ए. एस. नगर मोहाली द्वारा तारीख 24 अप्रैल, 2017 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल किया है जिसके द्वारा आवेदक द्वारा अतिरिक्त विवाद्यकों को विरचित करने के लिए फाइल किया गया आवेदन खारिज किया गया है । पुनरीक्षण कर्ता ने उक्त आदेश से व्यथित होकर वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया है । पुनरीक्षण आवेदन मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – मामले की सूचना तारीख 7 जुलाई, 2017 को जारी की गई थी । इसके पश्चात् तारीख 27 फरवरी, 2018 के आदेश के अनुसार तामीली के बावजूद प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ । उनके विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की गई । प्रत्यर्थी सं. 5 और 6 के बारे में यह पाया गया है कि वे अपनी ससुराल में रहते हैं । उनके ऊपर तामीली के लिए नया पता मांगा गया था । अगली तारीख को अर्थात् तारीख 3 अगस्त, 2018 को प्रत्यर्थी सं. 1, 2, 3, 4 और 6 की ओर से उपस्थित श्री हर्ष चोपड़ा की ओर से श्री एच. एस. भूल्लर उपस्थित हुए और दलीलें देने के लिए समय चाहा । मामला बहस हेतु तारीख 15 नवंबर, 2018 के लिए स्थगित किया गया था । वाद प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा फाइल किया गया था । केवल प्रतिवादी सं. 3/आवेदक ने वाद में पक्षकार की हैसियत से मामले का विरोध किया था । चूंकि माटू सिंह के अन्य विधिक प्रतिनिधियों ने अपने-अपने लिखित कथन फाइल नहीं किए इसलिए प्रत्यर्थी सं. 1 ने वादी होने के नाते वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन के लिए पक्षकार की हैसियत से मामले का विरोध किया । श्री हर्ष चोपड़ा अधिवक्ता द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 का सम्यक्तः प्रतिनिधित्व किया गया है । आवेदक/प्रतिवादी सं. 3 के विद्वान् काउंसेल ने वादी की प्रतिपरीक्षा का अवलंब लिया है जिसमें उसने यह स्वीकार किया है कि माटू सिंह उसकी पुत्री का श्वसुर था और उसने 1995 के अक्तूबर मास में प्रतिवादी सं. 1 से 3 और स्वर्गीय माटू सिंह के बीच किसी कुटुम्बीय व्यवस्थापन के संबंध में अनभिज्ञता अभिव्यक्त की है । उसने वाद संपत्ति में से तीन एकड़ भूमि के संबंध में भी जो माटू सिंह द्वारा आवेदक/प्रतिवादी सं. 3 को देना बताई गई है, अनभिज्ञता व्यक्त की है । वादी ने यह निवेदन किया

है कि भूमि का कुछ भाग पैतृक है और भूमि का कुछ भाग उसे विल के द्वारा प्राप्त हुआ है । पहले ही विरचित विवाद्यकों और विरचित किए जाने के लिए ईप्सित अतिरिक्त विवाद्यकों का परिशीलन करने पर यह उपदर्शित होता है कि प्रतिवादी सं. 3 द्वारा लिखित कथन में किए गए कथन वर्तमान मामले में आधारभूत संविवाद से संगत हैं । प्रतिवादी सं. 3 को उसके पिता/मूल विक्रेता की मृत्यु के पश्चात् विधिक प्रतिनिधि के रूप में पक्षकार नहीं बनाया गया है और इसके बजाय प्रतिवादी सं. 3 के विरुद्ध मूल वाद फाइल किया गया है । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 4 और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 के निबंधनों के बीच विभेद किया जाना चाहिए । यदि प्रतिवादी सं. 3 को मूल विक्रेता की मृत्यु के पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 4 की सहायता से पक्षकार बनाया जाता है तब इस बात की संभावना है कि वह मूल विक्रेता द्वारा किए गए कथन से बाहर नहीं जा सकता तथापि, यदि उसे सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 की सहायता से पक्षकार बनाया जाता है तब वह लिखित कथन में स्वयं अपना कथन करने के लिए अपनी वैयक्तिक क्षमता में होगा । प्रतिवादी सं. 3/आवेदक द्वारा लिखित कथन में लिया गया आधार अतिरिक्त विवाद्यक से संगत होगा और ऐसे विवाद्यकों का विरचन उनके बीच संविवाद के वास्तविक अवधारण के लिए संगत होगा । ऊपर अभिलिखित कारणों से यह पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया जाता है । सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), एस. ए. एस. नगर, मोहाली द्वारा तारीख 24 अप्रैल, 2017 को पारित आक्षेपित आदेश एतदद्वारा अपास्त किया जाता है । विचारण न्यायालय द्वारा प्रतिवादी सं. 3/आवेदक द्वारा अनुरोध किए गए अतिरिक्त विवाद्यक विरचित किए जाएंगे और तत्पश्चात् विचारण न्यायालय विधि के अनुसरण में गुण-दोष के आधार पर वाद को विनिश्चित करने के लिए कार्यवाही करेगा । (पैरा 11, 12, 15 और 16)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2016] 2016 (5) आर. सी. आर. (सिविल) 290 :
गुरशरण सिंह बनाम **सरबजोत सिंह और अन्य** ; 13

[2014] 2014 (2) सिविल सी. सी. 66 :
छबरोल श्रीरामालु बनाम **वकालापुड़ी सत्यनारायण** ; 13

[2007] ए. आई. आर. 2007 आंध्र प्रदेश 150 =
2007 (5) आर. सी. आर. (सिविल) 560 :
चांद बी. (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य बनाम **हमीदुननिसा और अन्य** ; 14

[2004] ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 4472 =
2004 (3) आर. सी. आर. (सिविल) 688 :
पी. डिसूजा बनाम **सोनडिरलो नायडू** ; 14

[1998] 1998 (3) आर. सी. आर. (सिविल) 48 :
जगजीत सिंह बनाम **मिट्ठू सिंह** ;13

[1988] 1988 (2) पी. एल. आर. 510 :
अनिल कुमार और अन्य बनाम **रणवीर सिंह** । 13

सिविल (पुनरीक्षणीय) अधिकारिता : 2017 का सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 4370.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन सिविल पुनरीक्षण ।

आवेदक की ओर से श्री परविंदर सिंह

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री हर्ष चोपड़ा और एच. एस. भुल्लर

न्यायमूर्ति राज मोहन सिंह – आवेदक/प्रतिवादी सं. 3 ने यह पुनरीक्षण आवेदन सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), एस. ए. एस. नगर मोहाली द्वारा तारीख 24 अप्रैल, 2017 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल किया है जिसके द्वारा आवेदक द्वारा अतिरिक्त विवाद्यकों को विरचित करने के लिए फाइल किया गया आवेदन खारिज किया गया है ।

2. यहां मामले के कतिपय तथ्यों का जो सुसंगत हैं, उल्लेख किया

जाता है । वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 ने तारीख 4 अप्रैल, 2014 के विक्रय करार के विनिर्दिष्ट अनुपालन के आधार पर कब्जे के लिए एक वाद फाइल किया था । यह विक्रय करार माटू सिंह द्वारा वादी के हक में 19 कैनाल 12 मरला माप की भूमि के जिसका ब्यौरा वादपत्र में दिया गया है, संबंध में निष्पादित किया गया था । वाद इन प्रकथनों के साथ फाइल किया गया था कि माटू सिंह ने वादी को यह बताया था कि उसने गांव के कुछ व्यक्तियों से ऋण लिया था जिसके लिए गुरदीप सिंह नामक व्यक्ति ने कुछ सादा स्टाम्प पत्रों पर उसके हस्ताक्षर लिए थे और कूटरचित विक्रय करार तैयार कर लिया है । माटू सिंह के विरुद्ध सिविल न्यायालय में उक्त करार के आधार पर विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए एक वाद फाइल किया गया था । माटू सिंह ने यह बताया था कि वह उक्त व्यक्तियों से समझौता करना चाहता है और उसने वादी के हक में अपनी संपत्ति विक्रीत करने का प्रस्ताव किया । वादी ने मृतक माटू सिंह का निकट का नातेदार होने के कारण उसका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया । वादी ने माटू सिंह की ओर से न्यायालय में मांगपत्र (डिमांड ड्राफ़्ट) सं. 367294 द्वारा 19 लाख 50 हजार रुपए की धनराशि संदत्त की थी और उक्त वाद में समझौता हो गया था ।

3. माटू सिंह ने वादी को यह भी बताया था कि उसने कुछ अन्य व्यक्तियों से भी ऋण लिया था और अपनी संपत्ति का कुछ भाग बंधक किया था और उक्त संपत्ति के मोचन के लिए माटू सिंह ने पुन: वादी से संपर्क किया और यह पूछा कि क्या वह उसके ऋण को चुकाना चाहता है । माटू सिंह ने वादी से संपर्क करके वादी के हक में अपनी भूमि विक्रीत करने की सहमति जताई जिसके लिए वादी तैयार हो गया और 19 कैनाल 12 मरला माप की भूमि के लिए 31 लाख 25 हजार रुपए एकड़ की दर से तारीख 4 अप्रैल, 2014 को विक्रय करार निष्पादित किया । वादी ने तारीख 4 अप्रैल, 2014 को 26 लाख रुपए की धनराशि का संदाय किया था जिसमें से 19 लाख 50 हजार रुपए की धनराशि मांगपत्र के जरिए संदत्त की गई थी और शेष 6 लाख 50 हजार रुपए की धनराशि माटू सिंह को नकद संदत्त की गई थी । तारीख 4 अप्रैल, 2014 के विक्रय करार के अनुसार वादी को माटू सिंह को

तारीख 30 नवंबर, 2014 को या उससे पूर्व 38 लाख रुपए का संदाय करना था और विक्रय विलेख तारीख 8 जून, 2015 तक निष्पादित किया जाना था । माटू सिंह ने पुन: तारीख 12 नवंबर, 2014 को साक्षियों की उपस्थिति में 20 लाख रुपए की धनराशि प्राप्त की थी और करार के पृष्ठ भाग पर रसीद के रूप में इस आशय का पृष्ठांकन भी किया था । तारीख 26 नवंबर, 2014 को माटू सिंह को साक्षियों की उपस्थिति में पुन: 18 लाख रुपए की धनराशि संदत्त की गई थी और इसकी प्राप्ति के सबूत के रूप में माटू सिंह ने करार के पृष्ठ भाग पर पृष्ठांकन किया था । इस प्रकार से माटू सिंह (अब मृतक) ने वादी से अग्रिम धन के रूप में 64 लाख रुपए की धनराशि प्राप्त की थी । चूंकि माटू सिंह की तारीख 9 जनवरी, 2015 को मृत्यु हो गई और चूंकि प्रतिवादी मृतक माटू सिंह के विधिक वारिस हैं और उन्हें मृतक माटू सिंह की संपदा विरासत में मिली है इसलिए प्रतिवादियों के विरुद्ध माटू सिंह के विधिक वारिस होने के नाते वाद फाइल किया गया था ।

4. पक्षकारों के ज्ञापन के अनुसार पाल सिंह/प्रत्यर्थी सं. 1 वादी है । अवतार सिंह, हरचंद सिंह और लाभ सिंह मृतक माटू सिंह के पुत्र हैं । मुख्तयार कौर माटू सिंह की विधवा है जबकि बलविंदर कौर और मंजीत कौर माटू सिंह की पुत्रियां हैं । यह पुनरीक्षण आवेदन केवल प्रतिवादी सं. 3 द्वारा फाइल किया गया है ।

5. प्रतिवादी सं. 3/आवेदक द्वारा लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध किया गया था । प्रतिवादी सं. 3/आवेदक ने लिखित कथन में यह आधार लिया कि माटू सिंह ने कभी भी किसी व्यक्ति से कोई ऋण नहीं लिया था जैसाकि वादी द्वारा अभिकथित किया गया है । स्वर्गीय माटू सिंह ने तारीख 4 अप्रैल, 2014 को वादी के साथ विक्रय करार नहीं किया जैसाकि वादी द्वारा अभिकथित किया गया है । वादी ने कभी भी माटू सिंह को कोई धनराशि संदत्त नहीं की जैसाकि अभिकथित किया गया है । भूमि की दर कभी भी 31 लाख 25 हजार रुपए प्रति एकड़ के रूप में नियत नहीं की गई । यह दावा किया गया है कि करार कूटरचित है और गढ़ा गया है क्योंकि अभिकथित विक्रय करार के आधार पर कोई प्रतिफल नहीं दिया गया है । प्रतिवादी सं. 3/आवेदक ने यह भी दावा

किया कि वर्ष 2014 में भूमि का बाजार मूल्य 60 लाख रुपए प्रति एकड़ था । उत्तर दाता प्रतिवादी सं. 3, माटू सिंह और प्रतिवादी सं. 1 और 2 के बीच 1995 के अक्तूबर मास में एक मौखिक कुटुम्बीय व्यवस्थापन (समझौता) हुआ था जिसमें प्रतिवादी सं. 3 को लगभग 3 एकड़ भूमि और खसरा सं. 83 मिनजुमला (1-4) में 1/3 भाग दिया गया था और उसे इस भूमि का कब्जा भी प्रदत्त किया गया था । तब से प्रतिवादी सं. 3 स्वयं को भूमि का स्वामी और काबिज होने का दावा करता है । उसने लगभग 15 वर्ष पूर्व वृहत धनराशि लगाकर एक ट्यूब वैल भी लगाया था । अब प्रतिवादी सं. 3 ने लगभग पिछले 4-5 वर्षों से भूमि बटाई पर दी हुई है । वर्तमान में कुलजीत सिंह इस भूमि में बटाई के आधार पर खेती कर रहा है । प्रतिवादी सं. 3/आवेदक ने यह भी दावा किया है कि संपत्ति पैतृक और सहदायिक संपत्ति है । मृतक माटू सिंह ने कभी भी प्रतिवादी सं. 3 से अभिकथित विक्रय करार के निष्पादन के समय कोई सलाह नहीं ली थी और इसलिए यह दावा किया गया है कि उक्त विक्रय करार प्रतिवादी सं. 3 पर आबद्धकर नहीं है । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रतिवादी सं. 3 ने सभी पहलुओं पर वाद का विरोध किया है ।

6. प्रतिवादी सं. 3/आवेदक द्वारा लिखित कथन के जवाब में वादी द्वारा प्रत्युत्तर फाइल किया गया था जिसमें उसने वादपत्र में किए गए कथनों को दोहराया है ।

7. दोनों पक्षकारों द्वारा निम्नलिखित विवाद्यकों पर वाद लड़ा गया था :-

"(1) क्या वादी विनिर्दिष्ट अनुपालन द्वारा कब्जे के लिए हकदार है जैसाकि अनुरोध किया गया है ? ओ. पी. पी.

(2) क्या माटू सिंह ने तारीख 4 अप्रैल, 2014 को वादी के हक में विक्रय करार निष्पादित किया था ? ओ. पी. पी.

(3) क्या वादी स्थायी व्यादेश का अनुतोष पाने का हकदार है जैसाकि अनुरोध किया गया है ? ओ. पी. पी.

(4) क्या वाद वर्तमान प्ररूप में ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है ? ओ. पी. डी.

(5) क्या वादी ईमानदारी के साथ न्यायालय में नहीं आया है ? ओ. पी. डी.

(6) अनुतोष ।"

8. इसके पश्चात् प्रतिवादी सं. 3/आवेदक द्वारा निम्नलिखित अतिरिक्त विवाद्यक विरचित करने के लिए एक आवेदन फाइल किया गया था :-

"(क) क्या 1995 के अक्तूबर मास में वाद संपत्ति के संबंध में प्रतिवादी सं. 1 से 3 और स्वर्गीय श्री माटू के बीच कोई कुटुम्बीय व्यवस्थापन हुआ था ? ओ. पी. डी.

(ख) क्या वाद संपत्ति प्रतिवादी सं. 1 से 6 और स्वर्गीय श्री माटू की पैतृक और सहदायिक संपत्ति है ? ओ. पी. डी. ।"

9. वादी द्वारा उक्त आवेदन का विरोध किया गया था ।

10. अपर सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), मोहाली ने तारीख 24 अप्रैल, 2017 के आदेश द्वारा प्राथमिक रूप से इस आधार पर आवेदन खारिज कर दिया कि प्रतिवादी माटू सिंह के वर्ग I के उत्तराधिकारी होने के नाते माटू सिंह के जीवनकाल के दौरान की गई कार्रवाई से विधिक रूप से आबद्ध हैं । माटू सिंह के विधिक वारिस होने के नाते प्रतिवादियों द्वारा संपत्ति के कुटुम्बीय व्यवस्थापन और संपत्ति की प्रास्थिति के बारे में कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता क्योंकि प्रतिवादी माटू सिंह के विधिक वारिस होने के नाते माटू सिंह के द्वारा की गई कार्रवाई से आबद्ध हैं । इसके अतिरिक्त विनिर्दिष्ट अनुपालन के किसी वाद में प्रतिवादियों के कुटुम्बीय व्यवस्थापन (यदि कोई हो) के संबंध में कोई निष्कर्ष देना आवश्यक नहीं है और इसके अतिरिक्त संपत्ति की प्रास्थिति भी समाप्त नहीं हुई है । विचारण न्यायालय द्वारा उपर्युक्त आधार पर आक्षेपित आदेश पारित किया गया था ।

11. मामले की सूचना तारीख 7 जुलाई, 2017 को जारी की गई थी । इसके पश्चात् तारीख 27 फरवरी, 2018 के आदेश के अनुसार तामीली के बावजूद प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 की ओर से कोई उपस्थित नहीं हुआ । उनके विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाही की गई । प्रत्यर्थी सं. 5 और 6 के बारे में यह पाया गया है कि वे अपनी ससुराल में रहते हैं । उनके ऊपर तामीली के लिए नया पता मांगा गया था । अगली तारीख को अर्थात् तारीख 3 अगस्त, 2018 को प्रत्यर्थी सं. 1, 2, 3, 4 और 6 की ओर से उपस्थित श्री हर्ष चोपड़ा की ओर से श्री एच. एस. भूल्लर उपस्थित हुए और दलीलें देने के लिए समय चाहा । मामला बहस हेतु तारीख 15 नवंबर, 2018 के लिए स्थगित किया गया था । वाद प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा फाइल किया गया था । केवल प्रतिवादी सं. 3/आवेदक ने वाद में पक्षकार की हैसियत से मामले का विरोध किया था । चूंकि माटू सिंह के अन्य विधिक प्रतिनिधियों ने अपने-अपने लिखित कथन फाइल नहीं किए इसलिए प्रत्यर्थी सं. 1 ने वादी होने के नाते वर्तमान पुनरीक्षण आवेदन के लिए पक्षकार की हैसियत से मामले का विरोध किया । श्री हर्ष चोपड़ा अधिवक्ता द्वारा प्रत्यर्थी सं. 1 का सम्यक्त: प्रतिनिधित्व किया गया है ।

12. आवेदक/प्रतिवादी सं. 3 के विद्वान् काउंसेल ने वादी की प्रतिपरीक्षा का अवलंब लिया है जिसमें उसने यह स्वीकार किया है कि माटू सिंह उसकी पुत्री का श्वसुर था और उसने 1995 के अक्तूबर मास में प्रतिवादी सं. 1 से 3 और स्वर्गीय माटू सिंह के बीच किसी कुटुम्बीय व्यवस्थापन के संबंध में अनभिज्ञता अभिव्यक्त की है । उसने वाद संपत्ति में से तीन एकड़ भूमि के संबंध में भी जो माटू सिंह द्वारा आवेदक/प्रतिवादी सं. 3 को देना बताई गई है, अनभिज्ञता व्यक्त की है । वादी ने यह निवेदन किया है कि भूमि का कुछ भाग पैतृक है और भूमि का कुछ भाग उसे विल के द्वारा प्राप्त हुआ है ।

13. विद्वान् काउंसेल ने **छबरोल श्रीरामालु** बनाम **वकालापुड़ी**

सत्यनारायण[1] ; **जगजीत सिंह** बनाम **मिट्ठू सिंह**[2] ; **अनिल कुमार और अन्य** बनाम **रणवीर सिंह**[3] और **गुरशरण सिंह** बनाम **सरबजोत सिंह और अन्य**[4] वाले मामलों का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि जहां प्रतिवादियों द्वारा संयुक्त कुटुम्बीय संपत्ति के संबंध में कोई आक्षेप किया गया हो वहां उक्त विवाद्यक वाद के प्रभावी निपटान के लिए सुसंगत और महत्वपूर्ण बन जाता है । यदि वाद फाइल करने के पश्चात् मूल विक्रेता की मृत्यु पर उसके विधिक प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाया जाता है तब वे यह अभिवाक् नहीं कर सकते कि मूल विक्रेता पैतृक संपत्ति को अंतरित करने के लिए सक्षम नहीं था । वे केवल विक्रय विलेख को विधिक आवश्यकता के आधार पर इसके निष्पादन को चुनौती दे सकते हैं क्योंकि कर्ता को संपत्ति के विक्रीत करने से निवारित नहीं किया जा सकता तथापि, जहां विधिक प्रतिनिधियों को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 के अधीन वाद में पक्षकार बनाया जाता है अथवा जहां उन्हें वाद के फाइल करने के पूर्व विक्रेता की मृत्यु के पश्चात् वादी द्वारा प्रतिवादियों के रूप में पक्षकार बनाया गया है वहां विक्रेता के विधिक प्रतिनिधि स्वयं अपनी क्षमता में ऐसी प्रतिरक्षा ले सकते हैं और उन्हें विनिर्दिष्ट अनुपालन में किसी वाद में विक्रय विलेख के निष्पादन के पश्चात् उसे आक्षेपित करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता । ऐसे प्रतिवादी किसी विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए प्राथमिक रूप से बल नहीं दे सकते और उसके पश्चात् इस आधार पर वे स्वयं इसे आक्षेपित नहीं कर सकते । इस प्रक्रम पर यह भी विभेद किया गया है कि संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब के कर्ता को अन्य सहदायिकों द्वारा भूमि को विक्रीत करने से निवारित नहीं किया जा सकता, तथापि, यदि ऐसे कर्ता की मृत्यु वाद फाइल करने के पूर्व हो जाती है और सहदायिकों को वाद में उनकी वैयक्तिक क्षमता में पक्षकार बनाया जाता है तब ऐसे सहदायिक/प्रतिवादी किसी विशेष समय पर विक्रय विलेख के निष्पादन के लिए बाध्य नहीं किए जा सकते और तत्पश्चात् किसी पश्चातवर्ती प्रक्रम

---

[1] 2014 (2) सिविल सी. सी. 66.

[2] 1998 (3) आर. सी. आर. (सिविल) 48.

[3] 1988 (2) पी. एल. आर. 510.

[4] 2016 (5) आर. सी. आर. (सिविल) 290.

पर इसे स्वत: आक्षेपित नहीं कर सकते । इस संदर्भ में **जगजीत सिंह** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांत का अवलंब लिया जा सकता है । सहदायिक संपत्ति के संबंध में विनिर्दिष्ट अनुपालन के मामले में यदि विक्रय की संविदा में कुटुम्ब का हित नहीं है तो इसे प्रवृत्त नहीं कराया जा सकता ।

14. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अतिरिक्त विवाद्यक विरचित नहीं किए जा सकते क्योंकि ऐसा करना विनिर्दिष्ट अनुपालन में किसी विचार के क्षेत्र से परे होगा । इस संबंध में विद्वान् काउंसेल ने **पी. डिसूजा** बनाम **सोनडिरलो नायडू**[1] वाले मामले का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि यह अविवादित है कि संविदा के विनिर्दिष्ट अनुपालन के किसी वाद में वादी को संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए अपनी तैयारी और इच्छा साबित करनी चाहिए । यह प्रश्न कि क्या वादी द्वारा अपने भार का निर्वहन किया गया है या नहीं, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर होगा । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि वादी की प्रतिपरीक्षा के अनुसार जिसका कि प्रतिवादी सं. 3/आवेदक द्वारा अवलंब लिया गया है, वादी ने पैतृक संपत्ति के संबंध में कोई स्वीकारोक्ति नहीं की है । कथन को सम्पूर्णत: पढ़ा जाएगा । वादी ने अभिकथित कुटुम्बीय व्यवस्थापन के संबंध में किसी सुझाव को स्वीकार नहीं किया है । प्रतिपरीक्षा को पृथक् रूप से नहीं पढ़ा जा सकता अपितु इसे सम्पूर्णत: पढ़ा जाएगा । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 14 के संघटक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को लागू नहीं होते हैं । विद्वान् काउंसेल ने **चांद बी. (मृतक) द्वारा विधिक प्रतिनिधि और अन्य** बनाम **हमीदुननिसा और अन्य**[2] वाले मामले का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि अतिरिक्त विवाद्यक केवल पक्षकारों के बीच उद्भूत संविवाद पर ही विरचित किया जा सकता है और यदि विवाद्यक को विरचित करना पक्षकारों को अपने स्रोतों को बताने के लिए समर्थ बनाता हो तो मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में न्यायालय को प्रभावी रीति में संविवाद को विनिश्चित

---

[1] ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 4472 = 2004 (3) आर. सी. आर. (सिविल) 688.

[2] ए. आई. आर. 2007 आंध्र प्रदेश 150 = 2007 (5) आर. सी. आर. (सिविल) 560.

करने के लिए समर्थ बनाएगा ।

15. पहले ही विरचित विवाद्यकों और विरचित किए जाने के लिए ईप्सित अतिरिक्त विवाद्यकों का परिशीलन करने पर यह उपदर्शित होता है कि प्रतिवादी सं. 3 द्वारा लिखित कथन में किए गए कथन वर्तमान मामले में आधारभूत संविवाद से संगत हैं । प्रतिवादी सं. 3 को उसके पिता/मूल विक्रेता की मृत्यु के पश्चात् विधिक प्रतिनिधि के रूप में पक्षकार नहीं बनाया गया है और इसके बजाय प्रतिवादी सं. 3 के विरुद्ध मूल वाद फाइल किया गया है । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22 नियम 4 और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 के निबंधनों के बीच विभेद किया जाना चाहिए । यदि प्रतिवादी सं. 3 को मूल विक्रेता की मृत्यु के पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 22, नियम 4 की सहायता से पक्षकार बनाया जाता है तब इस बात की संभावना है कि वह मूल विक्रेता द्वारा किए गए कथन से बाहर नहीं जा सकता तथापि, यदि उसे सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 की सहायता से पक्षकार बनाया जाता है तब वह लिखित कथन में स्वयं अपना कथन करने के लिए अपनी वैयक्तिक क्षमता में होगा । प्रतिवादी सं. 3/आवेदक द्वारा लिखित कथन में लिया गया आधार अतिरिक्त विवाद्यक से संगत होगा और ऐसे विवाद्यकों का विरचन उनके बीच संविवाद के वास्तविक अवधारण के लिए संगत होगा ।

16. ऊपर अभिलिखित कारणों से यह पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया जाता है । सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), एस. ए. एस. नगर, मोहाली द्वारा तारीख 24 अप्रैल, 2017 को पारित आक्षेपित आदेश एतदद्वारा अपास्त किया जाता है । विचारण न्यायालय द्वारा प्रतिवादी सं. 3/आवेदक द्वारा अनुरोध किए गए अतिरिक्त विवाद्यक विरचित किए जाएंगे और तत्पश्चात् विचारण न्यायालय विधि के अनुसरण में गुणदोष के आधार पर वाद को विनिश्चित करने के लिए कार्यवाही करेगा ।

पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया गया ।

महः

(2019) 1 सि. नि. प. 536 मद्रास

जे. लिगोरिन

बनाम

गंगनाप्रागसी

तारीख 29 सितंबर, 2018

न्यायमूर्ति आर. सुब्बय्या और न्यायमूर्ति सी. श्रवणन

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(इक) – पति द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी – पति द्वारा यह अभिकथन किया जाना कि पत्नी वेलिंगटन स्थित अपनी ससुराल में केवल 10 दिन रहकर पांडिचेरी चली गई और वहीं रहने लगी – पत्नी द्वारा वेलिंगटन में ठंड बर्दाश्त न करने के कारण स्वास्थ्य कारणों से और अपनी नौकरी के कारण पांडिचेरी में रहने का कथन किया जाना – पति द्वारा परित्यजन और क्रूरता के आधार पर अर्जी – पति द्वारा 'क्रूरता' के संबंध में कोई विनिर्दिष्ट घटना, समय और स्थान का उल्लेख न किया जाना – पत्नी द्वारा दांपत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए आवेदन – पति द्वारा क्रूरता को साबित करने के लिए सबूत पेश किया जाना चाहिए – मात्र प्रकथनों के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर नहीं की जा सकती ।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 – धारा 13(1)(इख) – 29 वर्ष की लंबी अवधि तक पृथक् रहने के आधार पर विवाह के विघटन के लिए अर्जी – पत्नी द्वारा यह कथन किया जाना कि वह अपने पति के साथ आत्मीयता के साथ रहने के लिए तैयार है – पत्नी द्वारा दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए आवेदन फाइल किया जाना – विवाह-विच्छेद के लिए मात्र लम्बे समय से पृथक्-पृथक् रहना एक आधार नहीं हो सकता – पति या पत्नी द्वारा साथ रहने में जीवन को खतरा होने की आशंका को साबित किया जाना चाहिए ।

अपीलार्थी-पति द्वारा 2002 की एम. ओ. पी. सं. 49 में का मूल आवेदन यह अभिकथित करते हुए फाइल किया गया था कि उसके और

प्रत्यर्थी के बीच ईसाई रूढ़ियों और रीतियों के अनुसार तारीख 21 जून, 1989 को वेलिंगटन स्थित सेंट जोसफ चर्च में विवाह सम्पन्न हुआ था । विवाह के पश्चात् उन दोनों ने क्रशपेट, वेलिंगटन स्थित अपने मकान में रहना आरंभ कर दिया । प्रत्यर्थी-पत्नी अपनी ससुराल में केवल 10 दिनों तक रही और इसके पश्चात् वह पांडिचेरी वापस चली गई । इसके पश्चात् वह अपनी ससुराल लौटकर वापस नहीं आई । उक्त दस दिनों की अवधि के दौरान भी जब प्रत्यर्थी-पत्नी अपीलार्थी-पति के साथ अपनी ससुराल में रह रही थी तब उसका आचरण और व्यवहार अस्वाभाविक और झगड़ालू था । उसके पांडिचेरी चले जाने के पश्चात् वह एक विद्यालय में कार्य करने लगी थी । वह अपीलार्थी-पति पर यह दबाव दे रही थी कि पति ऊटी में रह रही अपनी बीमार और निर्भर माता तथा अविवाहित बहन को छोड़कर उसके साथ पांडिचेरी में रहे और तमिलनाडु सरकार में अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दे । चूंकि अपीलार्थी-पति तमिलनाडु सरकार के अग्निशमन सेवा विभाग में कार्य कर रहा था इसलिए उसका संघ राज्य-क्षेत्र पांडिचेरी में स्थानांतरण नहीं हो सकता था । अपीलार्थी-पति उसकी मांग को स्वीकार करने में असमर्थ था और इसके प्रतिकूल रूढ़ि के अनुसार पत्नी को क्रशपेट, ऊटी स्थित अपनी ससुराल में आकर पति के साथ रहना था । अपीलार्थी-पति अनेकों बार पांडिचेरी गया और उसने अपनी पत्नी की खुशामद की और उसने अपनी पत्नी अर्थात् प्रत्यर्थी से अपने साथ रहने का अनुरोध किया किंतु कोई परिणाम नहीं निकला । पति द्वारा खुशामद करने के दौरान प्रत्यर्थी ने अपनी इस मांग को दोहराया कि पति अपनी माता और बहन को छोड़कर उसके साथ पांडिचेरी में आकर रहे । अतः प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी-पति के साथ अपनी ससुराल में आकर रहने से इनकार कर दिया । उसने अपीलार्थी-पति का परित्यजन कर दिया और वह पिछले 29 वर्षों से किसी युक्तियुक्त कारण के बिना पांडिचेरी में अपने पति से पृथक् रह रही है । अपीलार्थी-पति द्वारा ये अपीलें पांडिचेरी के कुटुंब न्यायालय द्वारा 2001 के एम. ओ. पी. सं. 102 और 2002 की एम. ओ. पी. सं. 49 में तारीख 16 नवंबर, 2002 को पारित निर्णय और डिक्री को आक्षेपित करते हुए फाइल की गई हैं । कुटुंब न्यायालय ने

तारीख 16 नवंबर, 2009 के उपर्युक्त आदेश द्वारा अपीलार्थी-पति द्वारा अपने और प्रत्यर्थी-पत्नी के बीच तारीख 21 जून, 1989 को सम्पन्न विवाह को विघटित करने के लिए फ्रेंच सिविल कोड के अनुच्छेद 242 के अधीन फाइल की गई 2002 की एम. ओ. पी. सं. 49 को खारिज किया है । परिणामत: कुटुंब न्यायालय ने प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा फ्रेंच सिविल कोड के अनुच्छेद 214 के अधीन यह निदेश करने के लिए फाइल की गई 2001 की एम. ओ. पी. सं. 102 को मंजूर किया है कि अपीलार्थी-पति दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन द्वारा उसके साथ रहे । अपीलें खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थी-पति का यह पक्षकथन है कि उसकी पत्नी विवाह के पश्चात् केवल दस दिनों तक उसके साथ रही थी और तत्पश्चात् वह अपनी ससुराल छोड़ कर पांडिचेरी चली गई थी और उसने वहीं रहना आरंभ कर दिया था और वहां कार्य भी कर रही थी । उसने पति (अपीलार्थी) द्वारा बार-बार अनुरोध किए जाने के पश्चात् ऊटी में अपने पति के साथ रहने से इनकार कर दिया था । अपीलार्थी का यह भी पक्षकथन है कि प्रत्यर्थी ने उसके उच्चतर अधिकारियों को शिकायत भेजी थी और तद्द्वारा उसे अपने साथियों के बीच शर्मसार और बेइज्जत होना पड़ा था । इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि प्रत्यर्थी ने विवाह के पश्चात् अनुचित रूप से अपीलार्थी से अपने कुटुंब और नौकरी को छोड़कर उसके साथ पांडिचेरी में रहने पर जोर दिया था । प्रत्यर्थी का इस प्रकार का कार्य निश्चित रूप से 'क्रूरता' के क्षेत्र और व्याप्ति के अन्तर्गत आता है और इसलिए पति विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए हकदार है । अन्तत: यह दलील दी गई है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी दोनों ही सेवानिवृत्त हो चुके हैं और वे पिछले 29 वर्षों से अधिक की अवधि से पृथक्-पृथक् जीवनयापन कर रहे हैं और इसलिए अपीलार्थी और प्रत्यर्थी ऐसी स्थिति तक पहुंच चुके हैं कि उनका वैवाहिक जीवन निश्चित रूप से खंडित हो गया है । प्रत्यर्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल ने प्रत्युत्तर में यह दलील दी है कि चूंकि प्रत्यर्थी-पत्नी कतिपय बीमारियों से ग्रसित थी इसलिए वह ऊटी में जहां का वातावरण शीतल है, साथ रहने की स्थिति में नहीं थी और इसी कारण से वह पांडिचेरी

वापस आ गई और वहीं रहने लगी । तथापि, वह सप्ताह के अंत में पांडिचेरी से वेलिंगटन यात्रा करती थी और अपने पति के साथ रहती थी । वह अपने पति से बार-बार पांडिचेरी स्थानांतरण कराकर अपने साथ रहने के लिए कहती थी और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के साथ वैवाहिक क्रूरता बरती थी । इसके अतिरिक्त अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का लंबे समय और सतत् रूप से पृथक् रहना अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच सम्पन्न विवाह को विघटित करने के लिए एक आधार नहीं हो सकता और यह सभी मामलों में लागू किए जाने के लिए एक पक्का फार्मूला नहीं है । प्रकथनों और प्रत्युत्तरों के आधार पर न्यायालय का यह मत है कि यह अभिनिर्धारित करने के लिए कोई आधार नहीं बनता है कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के साथ वैवाहिक क्रूरता बरती थी और प्रत्यर्थी का अपीलार्थी के घर पर न रहने का कारण एक अन्यायोचित या अपर्याप्त कारण नहीं है । निचले न्यायालय के समक्ष दोनों पक्षों द्वारा फाइल किए गए आवेदनों के परिशीलन के आधार पर न्यायालय का यह मत है कि पति द्वारा विवाह के विघटन के लिए फाइल किया गया आवेदन साधारण और अस्पष्ट कथनों पर आधारित है और उसमें यह साबित करने के लिए किसी विनिर्दिष्ट घटना, तारीख और समय का उल्लेख नहीं किया गया है कि उसके साथ प्रत्यर्थी द्वारा उस अवसर पर क्रूरता बरती गई थी । यह सुस्थापित विधिक सिद्धांत है कि क्रूरता के संबंध में आवेदक के साथ ऐसी क्रूरता बरते जाने का उल्लेख होना चाहिए जिससे कि पति या पत्नी के साथ उसके मस्तिष्क में यह युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न हो कि पति या पत्नी में से किसी के द्वारा दूसरे के साथ रहना नुकसानदेह या घातक हो सकता है और यह बात केवल आवेदक के मानने के आधार पर ही विनिश्चित नहीं की जा सकती और इसका निर्णय उस आचरण के आधार पर किया जाना चाहिए जो साधारणतया पति या पत्नी द्वारा एक-दूसरे के साथ रहने में खतरनाक प्रतीत होता हो । वर्तमान मामले में पति द्वारा क्रूरता के संबंध में केवल यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी ने पति के उच्चतर अधिकारी को शिकायत भेजी थी और तद्द्वारा वह शर्मसार और बेइज्जत हुआ था । न्यायालय इस दलील को मानने के

लिए तैयार नहीं है । अन्यथा भी प्रत्यर्थी द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि उसने शांतिपूर्ण वैवाहिक जीवन व्यतीत करने हेतु अपीलार्थी को साथ रखने के आशय से शिकायत प्रस्तुत की थी । अत: वह आशय जिससे प्रत्यर्थी के उच्चतर अधिकारी को शिकायत भेजी गई थी, यह सुनिश्चित करना था कि अपीलार्थी अपनी नौकरी के संबंध में स्थानांतरण करा ले और इसलिए इसे प्रत्यर्थी की ओर से अपीलार्थी के साथ वैवाहिक क्रूरता बरतने के कार्य के रूप में नहीं समझा जा सकता । अत: उपर्युक्त सिद्धांत को दृष्टिगत करते हुए न्यायालय का यह मत है कि 'क्रूरता' की परिभाषा के अधीन कोई मामला नहीं बनता है । (पैरा 13, 14 और 15)

अपीलार्थी-पति ने मुख्यतया इस अपील में यह दलील दी है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी दोनों पिछले 29 वर्षों से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं और इसलिए विवाह के असुधार्य खंडन के आधार पर और अत्यधिक समय से पृथक्-पृथक् रहने के आधार पर उसने यह अनुरोध किया है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच वैवाहिक नातेदारी विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करके समाप्त कर दी जाए । तथापि, न्यायालय का यह मत है कि लंबे समय से और सतत् पृथक्करण स्वत: विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने के लिए एक आधार नहीं हो सकता और इस पर तभी विचार किया जाना चाहिए जब क्रूरता या अधित्यजन का आधार साबित कर दिया जाए । अत: केवल लंबे समय से पृथक्करण सदैव विवाह-विच्छेद के लिए एक आधार नहीं माना जा सकता । इसके अतिरिक्त वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी-पत्नी ने यह दावा किया है कि वह निस्संदेह अपीलार्थी के साथ आत्मीयता के साथ रही थी और इसके अतिरिक्त उसने अपीलार्थी-पति के साथ रहने के लिए भरसक प्रयास किए थे और पति उसके अनुरोध को नकार रहा था । यह तथ्य इस बात से साबित है कि प्रत्यर्थी ने भी स्पष्ट रूप से यह कथन करते हुए दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए एक आवेदन फाइल किया था कि वह अपीलार्थी के साथ वैवाहिक जीवन बिताने के लिए तैयार और इच्छुक है । जहां ऐसी स्थिति है, वहां इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि विवाह-विच्छेद की डिक्री की मंजूरी के लिए अर्जी में साधारण और अस्पष्ट कथन किए गए हैं, इस न्यायालय का यह मत है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच वैवाहिक-बंधन को विघटित

करने के लिए यह एक उचित मामला नहीं है । अत: कुटुंब न्यायालय ने विवाह-विच्छेद के लिए अपीलार्थी-पति द्वारा फाइल की गई अर्जी को खारिज करने और दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए फाइल की गई अर्जी को मंजूर करने में ठीक ही कार्य किया है । (पैरा 16)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2011] (2011) 9 एस. सी. सी. 97 = 2011 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5939 : **मिग क्रिकेट क्लब** बनाम **अभिनव साहाकार एजुकेशन सोसाइटी** ; 9

[2006] ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1675 = (2006) 4 एस. सी. सी. 558 : **नवीन कोहली** बनाम **नीलू कोहली** ; 8

[2002] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 591 = (2002) 2 एस. सी. सी. 73 : **सावित्री पांडे** बनाम **प्रेम चन्द्र पांडे** । 10

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2014 की सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 1454 और 1455.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन सिविल प्रकीर्ण अपीलें ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री टी. पी. मनोहरन और के. पी. जोतिस्वरन

प्रत्यर्थी की ओर से श्रीमती सुदर्शन सुंदर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. सुब्बय्या ने दिया ।

न्या. सुब्बय्या – अपीलार्थी-पति द्वारा ये अपीलें पांडिचेरी के कुटुंब न्यायालय द्वारा 2001 के एम. ओ. पी. सं. 102 और 2002 के एम. ओ. पी. सं. 49 में तारीख 16 नवंबर, 2002 को पारित निर्णय और

डिक्री को आक्षेपित करते हुए फाइल की गई है । कुटुंब न्यायालय ने तारीख 16 नवंबर, 2009 के उपर्युक्त आदेश द्वारा अपीलार्थी-पति द्वारा अपने और प्रत्यर्थी-पत्नी के बीच तारीख 21 जून, 1989 को सम्पन्न विवाह को विघटित करने के लिए फ्रेंच सिविल कोड के अनुच्छेद 242 के अधीन फाइल की गई 2002 की एम. ओ. पी. सं. 49 को खारिज किया है । परिणामत: कुटुंब न्यायालय ने प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा फ्रेंच सिविल कोड के अनुच्छेद 214 के अधीन यह निदेश करने के लिए फाइल की गई 2001 की एम. ओ. पी. सं. 102 को मंजूर किया है कि अपीलार्थी-पति दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन द्वारा उसके साथ रहे ।

2. अपीलार्थी-पति द्वारा 2002 की एम. ओ. पी. सं. 49 में का मूल आवेदन यह अभिकथित करते हुए फाइल किया गया था कि उसके और प्रत्यर्थी के बीच ईसाई रूढ़ियों और रीतियों के अनुसार तारीख 21 जून, 1989 को वेलिंगटन स्थित सेंट जोसफ चर्च में विवाह सम्पन्न हुआ था । विवाह के पश्चात् उन दोनों ने क्रशपेट, वेलिंगटन स्थित अपने मकान में रहना आरंभ कर दिया । प्रत्यर्थी-पत्नी अपनी ससुराल में केवल 10 दिनों तक रही और इसके पश्चात् वह पांडिचेरी वापस चली गई । इसके पश्चात् वह अपनी ससुराल लौटकर वापस नहीं आई । उक्त दस दिनों की अवधि के दौरान भी जब प्रत्यर्थी-पत्नी अपीलार्थी-पति के साथ अपनी ससुराल में रह रही थी तब उसका आचरण और व्यवहार अस्वाभाविक और झगड़ालू था । उसके पांडिचेरी चले जाने के पश्चात् वह एक विद्यालय में कार्य करने लगी थी । वह अपीलार्थी-पति पर यह दबाव दे रही थी कि पति ऊटी में रह रही अपनी बीमार और निर्भर माता तथा अविवाहित बहन को छोड़कर उसके साथ पांडिचेरी में रहे और तमिलनाडु सरकार में अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे दे । चूंकि अपीलार्थी-पति तमिलनाडु सरकार के अग्निशमन सेवा विभाग में कार्य कर रहा था इसलिए उसका संघ राज्य-क्षेत्र पांडिचेरी में स्थानांतरण नहीं हो सकता था । अपीलार्थी-पति उसकी मांग को स्वीकार करने में असमर्थ था और इसके प्रतिकूल रूढ़ि के अनुसार पत्नी को क्रशपेट, ऊटी स्थित अपनी ससुराल में आकर पति के साथ रहना था । अपीलार्थी-पति अनेकों बार पांडिचेरी गया और उसने अपनी पत्नी की खुशामद की और उसने अपनी

पत्नी अर्थात् प्रत्यर्थी से अपने साथ रहने का अनुरोध किया किंतु कोई परिणाम नहीं निकला । पति द्वारा खुशामद करने के दौरान प्रत्यर्थी ने अपनी इस मांग को दोहराया कि पति अपनी माता और बहन को छोड़कर उसके साथ पांडिचेरी में आकर रहे । अत: प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी-पति के साथ अपनी ससुराल में आकर रहने से इनकार कर दिया । उसने अपीलार्थी-पति का परित्यजन कर दिया और वह पिछले 29 वर्षों से किसी युक्तियुक्त कारण के बिना पांडिचेरी में अपने पति से पृथक् रह रही है ।

3. अपीलार्थी-पति का यह भी पक्षकथन है कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को मानसिक व्यथा पहुंचाने, उसे परेशान करने और उसकी ख्याति को नुकसान पहुंचाने के लिए एक अवसर पर अपीलार्थी-पति के ज्येष्ठ अधिकारी को एक मिथ्या शिकायत भेजी और यह शिकायत प्राप्त होने पर उसके ज्येष्ठ अधिकारी ने उसे वायरलैस के जरिए बुलाया और उसे यह सूचित किया कि उसकी पत्नी ने उसके विरुद्ध शिकायत की है और अधिकारी ने अपने समक्ष उपस्थित होने के लिए कहा । चूंकि अपीलार्थी-पति को वायरलैस के जरिए बुलाया गया था इसलिए इस बात की इत्तिला फायर स्टेशन के कर्मचारियों को भी हो गई । अपीलार्थी-पति की माता अत्यंत बूढ़ी है और उसकी बहन अविवाहित है और वह उन दोनों की देखभाल करता है और इसलिए अपीलार्थी-पति अपनी नौकरी से त्यागपत्र देने तथा पांडिचेरी जाने की स्थिति में नहीं था । प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपीलार्थी-पति को छोड़ दिया है और वह पृथक् रह रही है जिससे अपीलार्थी-पति को मानसिक वेदना और व्यथा होती है । अत: अपीलार्थी-पति ने मूल आवेदन फाइल किया जिसमें उसने अपने और प्रत्यर्थी के बीच तारीख 21 जून, 1989 को सम्पन्न विवाह को विघटित करने के लिए अनुरोध किया ।

4. प्रत्यर्थी-पत्नी ने प्रति-शपथपत्र फाइल करके मूल आवेदन में किए गए अभिकथनों से इनकार किया । प्रत्यर्थी-पत्नी का यह पक्षकथन है कि यह कहना गलत है कि विवाह के प्रथम दिवस से ही उसका अपीलार्थी-पति के साथ अस्वाभाविक व्यवहार था । उसने इस बात से

इनकार किया कि वह वेलिंगटन में अपीलार्थी-पति के साथ केवल 10 दिनों तक रही थी । उसने यह भी कथन किया कि वर्ष 2001 में उसने अपीलार्थी-पति के विरुद्ध दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए मूल आवेदन अर्थात् 2001 की एम. ओ. पी. सं. 102 फाइल की थी । अपीलार्थी-पति विवाह की तारीख से ही उसे ऊटी में ठण्डे वातावरण में अपने साथ रहने के लिए बल दे रहा था । प्रत्यर्थी-पत्नी शिरानली और टोंसिल की बीमारी से ग्रसित है और उसे अत्यधिक ठण्डे वातावरण से त्वचा रोग हो जाता है और इसलिए वह ऊटी के मौसम को बर्दाश्त नहीं कर सकती । अत: प्रत्यर्थी वेलिंगटन में अपीलार्थी के साथ रहने की स्थिति में नहीं थी और उसके लिए वहां रहना अत्यंत कठिन था । प्रत्यर्थी पांडिचेरी स्थित एक विद्यालय में सिलाई अध्यापिका के रूप में कार्य कर रही थी । वह वेलिंगटन सप्ताह के अंत में अर्थात् शनिवार, रविवार व अन्य छुट्टियों में जाती थी । प्रत्यर्थी-पत्नी ने वेलिंगटन में नौकरी पाने का भी प्रयत्न किया था तथापि, उसे वहां नौकरी नहीं मिल सकी और इसलिए उसने अपीलार्थी-पति से पांडिचेरी या निकट के स्थान में रहने के लिए अनुरोध किया था । प्रत्यर्थी-पत्नी पांडिचेरी में एक होस्टल में रह रही थी और वहां रहकर नौकरी कर रही थी । उसने आने-जाने में अत्यधिक धनराशि खर्च की थी और इससे उसे अत्यंत कठिनाई और मानसिक व्यथा हो रही थी । प्रत्यर्थी-पत्नी अकेली होने के कारण होस्टल में रह रही थी और उसकी शुभचिन्तक केवल नन, पुजारी और मित्र थे जो होस्टल में उसके साथ रह रहे थे । अत: उसने अपनी परेशानी के संबंध में वेलिंगटन में पेरिश-पुजारियों के समक्ष अभ्यावेदन भी प्रस्तुत किया था जिन्होंने जवाब में अपीलार्थी-पति को सलाह भी दी थी किंतु कोई परिणाम नहीं निकला । प्रत्यर्थी-पत्नी को यह भी सलाह दी गई थी कि वह उस विभाग में अभ्यावेदन प्रस्तुत करे जहां अपीलार्थी-पति कार्य कर रहा था जिससे कि पति का स्थानांतरण हो सके और वह उसके साथ रह सके । इन परिस्थितियों के अधीन प्रत्यर्थी ने ज्येष्ठ अधिकारियों के समक्ष शिकायत पेश की थी जहां अपीलार्थी नियोजित था । प्रत्यर्थी ने तारीख 2 अप्रैल, 2001 को वकील द्वारा सूचना भी

भेजी थी तथापि, अपीलार्थी-पति ने तारीख 28 मई, 2001 को टाल-मटोल वाला उत्तर दिया था । अत: प्रत्यर्थी-पत्नी ने दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए एक आवेदन अर्थात् 2001 की एम. ओ. पी. सं. 102 फाइल की । यद्यपि अपीलार्थी-पति ने यह कहते हुए उत्तर फाइल किया कि वह प्रत्यर्थी-पत्नी के साथ रहने के लिए तैयार और इच्छुक है तथापि, उसने विवाह-विच्छेद के लिए 2002 की एम. ओ. पी. सं. 49 फाइल की । प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा यह भी कहा गया है कि वह अपीलार्थी-पति के साथ रहने के लिए तैयार है और उसने अपीलार्थी-पति द्वारा फाइल की गई विवाह-विच्छेद की अर्जी को खारिज करने के लिए अनुरोध किया ।

5. पत्नी द्वारा कुटुंब न्यायालय के समक्ष फाइल की गई 2001 की एम. ओ. पी. सं. 102 में उसने पी. डब्ल्यू. 1 के रूप में स्वयं की परीक्षा कराई और दो अन्य साक्षियों की पी. डब्ल्यू. 2 और पी. डब्ल्यू. 3 के रूप में परीक्षा कराई तथा प्रदर्श पी-1 से प्रदर्श पी.-50 को चिह्नांकित कराया । पति ने आर. डब्ल्यू. 1 के रूप में स्वयं की परीक्षा कराई, तथापि, उसने कोई दस्तावेज चिह्नांकित नहीं कराया । पति द्वारा फाइल की गई 2002 की एम. ओ. पी. सं. 49 में उसने पी. डब्ल्यू. 1 के रूप में स्वयं की परीक्षा कराई और दो साक्षियों की पी. डब्ल्यू. 2 और पी. डब्ल्यू. 3 के रूप में परीक्षा कराई । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के विवाह का आमंत्रण (कार्ड) प्रदर्श पी. 1 के रूप में चिह्नांकित किया गया । पत्नी ने उक्त एम. ओ. पी. में स्वयं की आर. डब्ल्यू. 1 के रूप में परीक्षा कराई और पत्नी द्वारा प्रदर्श आर. 1 से प्रदर्श आर. 11 चिह्नांकित कराए गए ।

6. कुटुंब न्यायालय ने दोनों याचिकाओं में मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी-पति यह साबित करने में पूर्णतया विफल रहा है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने उसके साथ क्रूरता बरती थी और स्वैच्छिक रूप से अपनी ससुराल को परित्यक्त कर दिया था और तद्द्वारा कुटुंब न्यायालय ने पति द्वारा विवाह के विघटन के लिए फाइल की गई अर्जी खारिज कर

दी । अंततः कुटुंब न्यायालय द्वारा पत्नी द्वारा दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए फाइल किया गया आवेदन मंजूर किया गया था । पति ने उपर्युक्त आदेशों को आक्षेपित करते हुए वर्तमान अपीलें फाइल की हैं ।

7. अपीलार्थी-पति की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि कुटुंब न्यायालय ने इस तथ्य को विचार में नहीं लिया है कि अपीलार्थी की आयु लगभग 68 वर्ष है और वह अग्निशमन विभाग की सेवा से सेवानिवृत्त हो चुका है । इस समय वह पेंशन प्राप्त कर रहा है और वह वस्तुतः नीलगिरि स्थित क्रशपेट, वेलिंगटन जाकर रहने में असमर्थ है । अपीलार्थी अपनी बीमारी के कारण कुछ मिनटों से अधिक लगातार बैठा नहीं रह सकता । अपीलार्थी को खड़े रहने के लिए भी अन्यों की सहायता की आवश्यकता पड़ती है और उसे बाहर जाने के लिए और यात्रा करने के लिए दो व्यक्तियों की आवश्यकता रहती है । इसके अतिरिक्त वह अपने दिन-प्रतिदिन के उपचार के लिए अपनी अधिकतर पेंशन धनराशि खर्च कर देता है । अपीलार्थी-पति के विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी दलील दी गई है कि प्रत्यर्थी-पत्नी की आयु लगभग 64 वर्ष है और वह भी संघ राज्य-क्षेत्र, पांडिचेरी की सेवा से सेवानिवृत्त होकर पेंशन प्राप्त कर रही है । अपीलार्थी-पति के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि प्रत्यर्थी-पत्नी विवाह के पश्चात् केवल 10 दिनों तक अपीलार्थी-पति के साथ रही थी और उसने किसी न्यायोचित या पर्याप्त कारण के बिना अपनी ससुराल छोड़ दी थी । अपीलार्थी और प्रत्यर्थी पिछले 29 वर्षों से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं । अतः अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच वैवाहिक नातेदारी पूर्ण रूप से खंडित हो गई है और इसलिए उसको प्रत्यास्थापित नहीं किया जा सकता । अतः अपीलार्थी, प्रत्यर्थी द्वारा परेशान किए बिना अपने शेष जीवन को शांतिपूर्वक जीना चाहता है ।

8. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि प्रत्यर्थी-पत्नी इस सीमा तक पहुंची कि उसने अपीलार्थी के उच्चतर अधिकारियों के समक्ष उसके विरुद्ध शिकायत संस्थित की और इस

शिकायत के आधार पर उसे उच्चतर अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने के लिए वायरलैस द्वारा बुलाया गया था । यह संदेश सभी अग्निशमन स्टेशनों को प्राप्त हुआ था जिसके कारण वह अपने साथियों के बीच बेइज्जत हुआ । अत: अपीलार्थी-पति की यह दलील है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने उसके विरुद्ध मानसिक क्रूरता बरती है और इसलिए अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी-पत्नी के साथ रहना व्यवहारिक रूप से असंभव हो गया है । अपीलार्थी-पति के विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलीलों के समर्थन में उच्चतम न्यायालय द्वारा **नवीन कोहली** बनाम **नीलू कोहली**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अपीलार्थी-पति को विवाह-विच्छेद की डिक्री से इनकार करना दोनों ही के लिए अनर्थकारी होगा और पिछले 29 वर्षों से मानसिक और शारीरिक व्यथा पहुंचने के पश्चात् अपीलार्थी-पति अपने जीवन की बची हुई शेष अवधि के लिए उसी व्यथा के साथ आगे जीवन नहीं गुजार सकता है ।

9. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने फ्रेंच संहिता के अधीन फाइल की गई अर्जी की ग्राह्यता के संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **मिग क्रिकेट क्लब** बनाम **अभिनव साहाकार एजुकेशन सोसाइटी**[2] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी है कि विधि के गलत उपबंधों को उद्धृत करने से किसी मुकदमेदार को अनुतोष मंजूर करने के लिए उसकी हकदारी समाप्त नहीं होती, यदि न्यायालय द्वारा अन्यथा अन्य किसी विधि के अधीन गुण-दोष के आधार पर ऐसा अनुतोष मंजूर किया जा सकता हो । अत: अपीलार्थी-पति के विद्वान् काउंसेल ने अपीलें मंजूर करने के लिए अनुरोध किया है ।

10. अपीलार्थी-पति के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई दलीलों का विरोध करते हुए प्रत्यर्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच विवाह तारीख 21 जून, 1989 को

---

[1] ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 1675 = (2006) 4 एस. सी. सी. 558.

[2] (2011) 9 एस. सी. सी. 97 = 2011 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 5939.

ईसाई रूढ़ियों और रीतियों के अनुसार सम्पन्न हुआ था । इसके पश्चात् वे दोनों ऊटी के वेलिंगटन में साथ-साथ रहे थे । चूंकि प्रत्यर्थी-पत्नी अक्सर बीमार रहती थी इसलिए वह ठंडे वातावरण के कारण वेलिंगटन, ऊटी में रहने की स्थिति में नहीं थी और इसलिए वह पांडिचेरी में रहने लगी थी । वह सप्ताह के अंत में वेलिंगटन आ जाती थी और अपने पति के साथ रहती थी । प्रत्यर्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि अपीलार्थी-पति ने पहले दिन से ही प्रत्यर्थी के साथ क्रूरता बरती और उसके बार-बार अनुरोध करने पर भी अपीलार्थी ने पांडिचेरी आने और उसके साथ रहने के लिए कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई । अपीलार्थी-पति द्वारा यह उपदर्शित करने के लिए केवल साधारण और अस्पष्ट कथनों के सिवाय इस बारे में किसी प्रकार का कोई सबूत पेश नहीं किया गया है कि प्रत्यर्थी उसके साथ क्रूरता बरतती थी और उसने किसी न्यायोचित और पर्याप्त कारण के बिना अपने पति को परित्यक्त कर दिया था । प्रत्यर्थी-पत्नी के विरुद्ध किया गया एकमात्र कथन यह है कि उसने अपीलार्थी-पति के उच्चतर अधिकारी को शिकायत की थी और यह शिकायत केवल इस आशय के साथ की गई थी कि उसके उच्चतर अधिकारी अपीलार्थी-पति को उसके साथ रहने के लिए सलाह देंगे और इस प्रकार एक शांतिपूर्ण वैवाहिक जीवन बीतेगा । प्रत्यर्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलीलों के समर्थन में माननीय उच्चतम द्वारा **सावित्री पांडे** बनाम **प्रेम चन्द्र पांडे**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जहां पति या पत्नी द्वारा क्रूरता के आधारों पर विवाह के विघटन के लिए कोई मूल अर्जी फाइल की गई हो वहां पति या पत्नी का यह कर्तव्य है कि वह सबूत पेश करके न्यायालय का समाधान करे । यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि शारीरिक क्रूरता में ऐसे कार्य सम्मिलित हैं जो पति और पत्नी में से किसी के स्वास्थ्य के लिए खतरा हों और इसमें शारीरिक क्षति पहुंचाना या ऐसी क्षति पहुंचने की आशंका होना भी सम्मिलित है । प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल के अनुसार माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा उपर्युक्त विनिश्चय में

---

[1] ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 591 = (2002) 2 एस. सी. सी. 73.

अधिकथित कोई भी मानदंड इस मामले को लागू नहीं होता है । कुटुंब न्यायालय ने उपर्युक्त पहलुओं पर विचार करने के पश्चात् अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच सम्पन्न विवाह को विघटित करने के लिए ठीक ही इनकार किया है और इसलिए प्रत्यर्थी ने अपीलों की खारिजी के लिए अनुरोध किया है ।

11. हमने मामले में दोनों पक्षों द्वारा किए गए अभिवचनों और विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया तथा अभिलेखों का परिशीलन किया ।

12. हमने यह पाया है कि पक्षकारों द्वारा प्रारंभत: फ्रेंच सिविल कोड जो पक्षकारों को लागू नहीं होता है, के अधीन कुटुंब न्यायालय के समक्ष मूल आवेदन फाइल किए गए थे । केवल इस आधार पर ही हमारा यह मत है कि पक्षकारों द्वारा कुटुंब न्यायालय, पांडिचेरी के समक्ष फाइल किए गए आवेदन ग्राह्य नहीं हैं । तथापि, चूंकि कुटुंब न्यायालय ने मूल आवेदन ग्रहण किए हैं और चूंकि कुटुंब न्यायालय के समक्ष इनकी ग्राह्यता को प्रश्नगत नहीं किया गया था इसलिए हम इनकी ग्राह्यता के मुद्दे पर विचार नहीं कर रहे हैं तथा अन्यथा भी इन अपीलों में कुटुंब न्यायालय के समक्ष मूल आवेदन फाइल किए गए थे ।

13. अपीलार्थी-पति का यह पक्षकथन है कि उसकी पत्नी विवाह के पश्चात् केवल दस दिनों तक उसके साथ रही थी और तत्पश्चात् वह अपनी ससुराल छोड़ कर पांडिचेरी चली गई थी और उसने वहीं रहना आरंभ कर दिया था और वहां कार्य भी कर रही थी । उसने पति (अपीलार्थी) द्वारा बार-बार अनुरोध किए जाने के पश्चात् ऊटी में अपने पति के साथ रहने से इनकार कर दिया था । अपीलार्थी का यह भी पक्षकथन है कि प्रत्यर्थी ने उसके उच्चतर अधिकारियों को शिकायत भेजी थी और तद्द्वारा उसे अपने साथियों के बीच शर्मसार और बेइज्जत होना पड़ा था । इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि प्रत्यर्थी ने विवाह के पश्चात् अनुचित रूप से अपीलार्थी से अपने कुटुंब और नौकरी को छोड़कर उसके साथ पांडिचेरी में रहने पर जोर दिया था । प्रत्यर्थी का इस प्रकार का कार्य निश्चित रूप से 'क्रूरता' के क्षेत्र और व्याप्ति के

अन्तर्गत आता है और इसलिए पति विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए हकदार है । अन्ततः यह दलील दी गई है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी दोनों ही सेवानिवृत्त हो चुके हैं और वे पिछले 29 वर्षों से अधिक की अवधि से पृथक्-पृथक् जीवनयापन कर रहे हैं और इसलिए अपीलार्थी और प्रत्यर्थी ऐसी स्थिति तक पहुंच चुके हैं कि उनका वैवाहिक जीवन निश्चित रूप से खंडित हो गया है ।

14. प्रत्यर्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल ने प्रत्युत्तर में यह दलील दी है कि चूंकि प्रत्यर्थी-पत्नी कतिपय बीमारियों से ग्रसित थी इसलिए वह ऊटी में जहां का वातावरण शीतल है, साथ रहने की स्थिति में नहीं थी और इसी कारण से वह पांडिचेरी वापस आ गई और वहीं रहने लगी । तथापि, वह सप्ताह के अंत में पांडिचेरी से वेलिंगटन यात्रा करती थी और अपने पति के साथ रहती थी । वह अपने पति से बार-बार पांडिचेरी स्थानांतरण कराकर अपने साथ रहने के लिए कहती थी और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के साथ वैवाहिक क्रूरता बरती थी । इसके अतिरिक्त अपीलार्थी और प्रत्यर्थी का लंबे समय और सतत् रूप से पृथक् रहना अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच सम्पन्न विवाह को विघटित करने के लिए एक आधार नहीं हो सकता और यह सभी मामलों में लागू किए जाने के लिए एक पक्का फार्मूला नहीं है ।

15. प्रकथनों और प्रत्युत्तरों के आधार पर हमारा यह मत है कि यह अभिनिर्धारित करने के लिए कोई आधार नहीं बनता है कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के साथ वैवाहिक क्रूरता बरती थी और प्रत्यर्थी का अपीलार्थी के घर पर न रहने का कारण एक अन्यायोचित या अपर्याप्त कारण नहीं है । निचले न्यायालय के समक्ष दोनों पक्षों द्वारा फाइल किए गए आवेदनों के परिशीलन के आधार पर हमारा यह मत है कि पति द्वारा विवाह के विघटन के लिए फाइल किया गया आवेदन साधारण और अस्पष्ट कथनों पर आधारित है और उसमें यह साबित करने के लिए किसी विनिर्दिष्ट घटना, तारीख और समय का उल्लेख नहीं किया गया है कि उसके साथ प्रत्यर्थी द्वारा उस अवसर पर क्रूरता बरती गई थी ।

यह सुस्थापित विधिक सिद्धांत है कि क्रूरता के संबंध में आवेदक के साथ ऐसी क्रूरता बरते जाने का उल्लेख होना चाहिए जिससे कि पति या पत्नी के साथ उसके मस्तिष्क में यह युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न हो कि पति या पत्नी में से किसी के द्वारा दूसरे के साथ रहना नुकसानदेह या घातक हो सकता है और यह बात केवल आवेदक के मानने के आधार पर ही विनिश्चित नहीं की जा सकती और इसका निर्णय उस आचरण के आधार पर किया जाना चाहिए जो साधारणतया पति या पत्नी द्वारा एकदूसरे के साथ रहने में खतरनाक प्रतीत होता हो । वर्तमान मामले में पति द्वारा क्रूरता के संबंध में केवल यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी ने पति के उच्चतर अधिकारी को शिकायत भेजी थी और तद्द्वारा वह शर्मसार और बेइज्जत हुआ था । हम इस दलील को मानने के लिए तैयार नहीं हैं । अन्यथा भी प्रत्यर्थी द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि उसने शांतिपूर्ण वैवाहिक जीवन व्यतीत करने हेतु अपीलार्थी को साथ रखने के आशय से शिकायत प्रस्तुत की थी । अत: वह आशय जिससे प्रत्यर्थी के उच्चतर अधिकारी को शिकायत भेजी गई थी, यह सुनिश्चित करना था कि अपीलार्थी अपनी नौकरी के संबंध में स्थानांतरण करा ले और इसलिए इसे प्रत्यर्थी की ओर से अपीलार्थी के साथ वैवाहिक क्रूरता बरतने के कार्य के रूप में नहीं समझा जा सकता । अत: उपर्युक्त सिद्धांत को दृष्टिगत करते हुए हमारा यह मत है कि 'क्रूरता' की परिभाषा के अधीन कोई मामला नहीं बनता है ।

16. अपीलार्थी-पति ने मुख्यतया इस अपील में यह दलील दी है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी दोनों पिछले 29 वर्षों से पृथक्-पृथक् रह रहे हैं और इसलिए विवाह के असुधार्य खंडन के आधार पर और अत्यधिक समय से पृथक्-पृथक् रहने के आधार पर उसने यह अनुरोध किया है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच वैवाहिक नातेदारी विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करके समाप्त कर दी जाए । तथापि, हमारा यह मत है कि लंबे समय से और सतत् पृथक्करण स्वत: विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने के लिए एक आधार नहीं हो सकता और इस पर तभी विचार किया जाना चाहिए जब क्रूरता या अधित्यजन का आधार साबित कर दिया

जाए । अतः केवल लंबे समय से पृथक्करण सदैव विवाह-विच्छेद के लिए एक आधार नहीं माना जा सकता । इसके अतिरिक्त वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी-पत्नी ने यह दावा किया है कि वह निस्संदेह अपीलार्थी के साथ आत्मीयता के साथ रही थी और इसके अतिरिक्त उसने अपीलार्थी-पति के साथ रहने के लिए भरसक प्रयास किए थे और पति उसके अनुरोध को नकार रहा था । यह तथ्य इस बात से साबित है कि प्रत्यर्थी ने भी स्पष्ट रूप से यह कथन करते हुए दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए एक आवेदन फाइल किया था कि वह अपीलार्थी के साथ वैवाहिक जीवन बिताने के लिए तैयार और इच्छुक है । जहां ऐसी स्थिति है, वहां इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि विवाह-विच्छेद की डिक्री की मंजूरी के लिए अर्जी में साधारण और अस्पष्ट कथन किए गए हैं, इस न्यायालय का यह मत है कि अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच वैवाहिक-बंधन को विघटित करने के लिए यह एक उचित मामला नहीं है । अतः कुटुंब न्यायालय ने विवाह-विच्छेद के लिए अपीलार्थी-पति द्वारा फाइल की गई अर्जी को खारिज करने और दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए फाइल की गई अर्जी को मंजूर करने में ठीक ही कार्य किया है ।

17. परिणामतः दोनों प्रकीर्ण अपीलें विफल होती हैं और इसलिए ये खारिज की जाती हैं । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपीलें खारिज की गईं ।

मह.

राम तरी और अन्य

बनाम

रतन चन्द और अन्य

तारीख 11 अक्तूबर, 2018

न्यायमूर्ति धर्म चन्द चौधरी

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (1956 का 30) – धारा 22 – कृषि और आबादी भूमि – सह-अंशदार – सह-अंशदार द्वारा दूसरे सह-अंशदार से भिन्न व्यक्ति को भूमि का विक्रय – सह-अंशधारी द्वारा अग्र-क्रय के अधिकार का दावा – विधिमान्यता – चूंकि सह-अंशदार ने अपने सह-अंशदार और सह-खातेदार को भूमि विक्रीत करने का कोई प्रस्ताव नहीं किया अत: वादी-सह-अंशदार का व्यतिक्रम न होने और अधिमानी अधिकार होने के कारण वह वाद-भूमि के प्रतिफल का संदाय करके भूमि का कब्जा पाने का अधिकारी है ।

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 – धारा 22 – कृषि और आबादी भूमि का विक्रय – सह-अंशदार द्वारा सह-अंशदार और सह-खातेदार से भिन्न व्यक्ति को विक्रय – वादी-सह-अंशदार द्वारा अग्र-क्रय का दावा – वादी द्वारा प्रतिवादी के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख की प्रति साक्ष्य में पेश न की जानी – प्रभाव – चूंकि प्रतिवादी द्वारा अपने हक में विक्रय विलेख के निष्पादन को स्वीकार किया गया है – इसके अतिरिक्त वादी के काउंसेल का यह दायित्व था कि वह विक्रय विलेख की प्रति साक्ष्य में पेश करे – अत: काउंसेल के व्यतिक्रम के लिए वादी को अनुतोष देने से इनकार नहीं किया जा सकता ।

वादी और प्रतिवादी सं. 2 के पिता सरन की मृत्यु होने पर उन्हें वाद भूमि समान भागों में विरासत में प्राप्त हुई थी । वादी के भाई प्रीतम अर्थात् प्रतिवादी सं. 2 ने तारीख 28 मई, 1996 (जिसे ग़लती से वादपत्र में 28 मई, 1995 के रूप में लिखा गया है) के विक्रय विलेख सं. 628 द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के हक में निर्मित आबादी सहित अपने भाग

का हस्तांतरण कर दिया था । वादी ने संयुक्त स्वामी होने और वाद-भूमि में कृषि-संबंधी हित रखने तथा इस संपत्ति में अधिमानी अधिकार रखने के आधार पर तथा प्रतिवादी सं. 1 के हक में इसके विक्रय से व्यथित होकर निर्धारित विक्रय प्रतिफल के संदाय पर इसे क्रय करने की इच्छा के साथ कब्जे के लिए अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर वाद फाइल किया कि वह अभी भी भूमि पर काबिज है और उसने इस पर आबादी निर्मित कर ली है । प्रतिवादी सं. 1 ने अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर वाद का विरोध किया कि वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है और न ही वादी को सुने जाने का अधिकार है और न ही वाद फाइल करने के लिए कोई वाद हेतुक उत्पन्न हुआ है । विवादित भूमि संयुक्त भूमि नहीं थी और इसके अतिरिक्त प्रतिवादी सं. 2 को उन्हें अपने भाग को बेचने के सभी अधिकार प्राप्त हैं । यह अपील 2012 की सिविल अपील सं. 19 में विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, (द्वितीय), ऊना द्वारा तारीख 31 जुलाई, 2013 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा अपील खारिज करते हुए विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), ऊना जिला ऊना द्वारा तारीख 1 सितंबर, 2007 को पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई है । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – विधायी आशय यह है कि यह प्रतिवादी सं. 2 का यह दायित्व था कि वह वादी को प्रश्नगत भूमि में अपने भाग को विक्रीत करने के लिए अपना आशय व्यक्त करते हुए उससे क्रय करने के लिए यदि वह हितबद्ध हो, कहता । अत: वादी यह दावा करने में पूर्णतया न्यायोचित है कि उसे इस बात की जानकारी नहीं थी कि प्रतिवादी सं. 2 प्रश्नगत भूमि प्रतिवादी सं. 1 को विक्रीत करने का आशय रखता है । यह सही है कि प्रतिवादी सं. 2 ने तारीख 28 मई, 1996 के विक्रय विलेख द्वारा भूमि विक्रीत कर दी है । यद्यपि विक्रय विलेख साक्ष्य में पेश नहीं किया गया है तथापि, इस बारे में कोई इनकार नहीं किया गया है और इसके बजाय प्रतिवादी सं. 1 ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उसने प्रश्नगत भूमि तारीख 28 मई, 1996 के विक्रय विलेख सं. 628 द्वारा भूमि क्रय की है । अत: इसके प्रतिकूल निष्कर्ष कि साक्ष्य में

विक्रय विलेख को पेश किए बिना इसके रद्दकरण का आदेश नहीं किया जा सकता, विधित: कायम रखे जाने योग्य नहीं है । (पैरा 13)

अब न्यायालय विधि के प्रथम सारभूत प्रश्न पर विचार करने के लिए अग्रसर होता है । तथ्यों के आधार पर संविवाद अधिक गंभीर नहीं है क्योंकि वादी और प्रतिवादी सं. 2 को उनके पूर्वजों से वाद भूमि विरासत में मिली है । दोनों निचले न्यायालयों ने इसे सहदायिकी संपत्ति होना अभिनिर्धारित किया है । संपत्ति वादी और प्रतिवादी सं. 2 को उनके पिता सरन की मृत्यु होने पर विरासत में मिली है । मामले के इस पहलू के संबंध में कोई भी विवाद नहीं है । वादपत्र के पैरा 4 में इन प्रकथनों को कि प्रतिवादी सं. 1 ने वाद भूमि तारीख 28 मई, 1996 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख सं. 628 द्वारा 15,000/- रुपए के बदले क्रय की है, लिखित कथन के पैरा 4 में विनिर्दिष्ट रूप से नहीं नकारा गया है । अत: प्रतिवादी सं. 1 की इस संबंध में खामोशी उसके स्वीकृति के बराबर है जिसका यह अर्थ है कि उसने वाद भूमि 15,000/- रुपए की धनराशि के बदले प्रतिवादी सं. 2 से क्रय की थी । प्रतिवादी सं. 1 की स्वयं की संस्वीकृति को दृष्टिगत करते हुए दोनों निचले न्यायालयों ने त्रुटिपूर्ण रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि विक्रय विलेख अभिलेख पर न होने के कारण इसे रद्द नहीं किया जा सकता और चूंकि इसके निष्पादन के बारे में कोई विवाद नहीं है इसलिए विक्रय विलेख साक्ष्य में पेश किए जाने की आवश्यकता नहीं थी । अन्यथा भी यह विद्वान् काउंसेल की जिम्मेदारी थी कि वह इसे साक्ष्य में पेश करते । अत: वादी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेल के व्यतिक्रम के लिए, यदि कोई हो, वादी को नुकसान नहीं पहुंचाया जा सकता । अत: मामले के तथ्यों और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का दोनों निचले न्यायालयों द्वारा गलत मूल्यांकन और गलत निर्वचन किया गया है और परिणामत: दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष दूषित हैं और इसलिए विधित: कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं । विधि के प्रथम सारभूत प्रश्न का भी तद्नुसार उत्तर दिया जाता है । उपर्युक्त सभी कारणों से आक्षेपित निर्णय और डिक्री विधित: और तथ्यत: कायम रखे जाने योग्य नहीं है । अत: इसे अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । परिणामत:

वाद डिक्री किया जाता है और वादी के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वह इस प्रयोजन के लिए हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 22 के अधीन आवेदन फाइल किए जाने पर सक्षम न्यायालय द्वारा यथा सहमत अथवा निर्धारित विक्रय-प्रतिफल का संदाय करने पर अपने अधिमानी अधिकार के प्रयोग द्वारा वाद भूमि का कब्जा पाने का हकदार है । जहां तक प्रतिवादी सं. 2 द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के हक में वाद भूमि के संबंध में तारीख 28 मई, 1996 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख सं. 628 का संबंध है, अवैध, अकृत और शून्य अभिनिर्धारित किया जाता है और इसलिए अभिखंडित किया जाता है । तथापि, मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में पक्षकारों को अपना-अपना खर्चा स्वयं वहन करने का निदेश किया जाता है । (पैरा 14 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2018]	(2018) 2 सी. सी. सी. 202 (एच. पी.) : **रोशन लाल** बनाम **प्रीतम सिंह** ;	3, 11, 12, 13
[1999]	ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 555 = (1999) 1 एस. सी. सी. 292 : **वैज नाथ और अन्य** बनाम **गुरम्मा और एक अन्य** ।	11

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2015 की नियमित द्वितीय अपील सं. 167.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री अमित जमवाल और अजय शर्मा

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री शांति स्वरूप

न्यायमूर्ति धर्म चन्द चौधरी – यह अपील 2012 की सिविल अपील सं. 19 में विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश, (द्वितीय), ऊना द्वारा तारीख 31 जुलाई, 2013 को पारित उस निर्णय और डिक्री के विरुद्ध

फाइल की गई है जिसके द्वारा विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), ऊना जिला ऊना द्वारा अपील खारिज करते हुए तारीख 1 सितंबर, 2007 को पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की गई है ।

2. जब यह अपील तारीख 26 नवंबर, 2015 को ग्रहण किए जाने के लिए/सुनवाई के लिए सूचीबद्ध की गई थी तब निम्नलिखित आदेश पारित किया गया था :-

> "अपीलार्थी-वादियों का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि एक समान मामला अर्थात् 2012 की नियमित द्वितीय अपील सं. 258, रोशन लाल **बनाम** प्रीतम सिंह, (2018) 2 सी. सी. सी. 202 (एच. पी.) जिसे इस न्यायालय की समन्वय-पीठ द्वारा वृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया गया है और जिसमें विधि का समान प्रश्न अन्तर्वलित है, वृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष निपटान के लिए लंबित है । मामला वृहत्तर न्यायपीठ के लिए निर्दिष्ट विधि के प्रश्न का विनिश्चय किए जाने के पश्चात् सूचीबद्ध किया जाए ।"

3. अब इस न्यायालय की वृहत्तर न्यायपीठ ने **रोशन लाल** बनाम **प्रीतम सिंह**[1] वाले मामले में निर्दिष्ट विधि के प्रश्न को तारीख 1 मार्च, 2018 के निर्णय द्वारा विनिश्चित कर दिया है ।

4. जहां तक मामले की तथ्यात्मक स्थिति का संबंध है, अपीलार्थी-वादी ने 6 मरला जो आई. के. 19 एम. एल. एस. माप भूमि का 1/6 भाग है, माप की वाद-भूमि के बारे में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 22 के अधीन अधिमानी अधिकार के जरिए कब्जे के लिए वाद फाइल किया था । खेवट सं. 806, खतौनी सं. 1920 में खसरा सं. 23143, 2322, 2324 सम्मिलित हैं, खसरा सं. 2313 के ऊपर दो खरपोश कक्ष हैं । यह संपत्ति (जसे आगे संक्षेप में 'वाद भूमि' कहा गया है) ग्राम खार, तहसील और जिला ऊना में स्थित है । प्रतिवादियों को 15,000/- रुपए विक्रय प्रतिफल के रूप में संदाय करके ½ भाग की मांग की गई है ।

---

[1] (2018) 2 सी. सी. सी. 202 (एच. पी.)

5. वादी और प्रतिवादी सं. 2 के पिता सरन की मृत्यु होने पर उन्हें वाद भूमि समान भागों में विरासत में प्राप्त हुई थी । वादी के भाई प्रीतम अर्थात् प्रतिवादी सं. 2 ने तारीख 28 मई, 1996 (जिसे ग़लती से वादपत्र में 28 मई, 1995 के रूप में लिख गया है) के विक्रय विलेख सं. 628 द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के हक में निर्मित आबादी सहित अपने भाग का हस्तांतरण कर दिया था । वादी ने संयुक्त स्वामी होने और वाद-भूमि में कृषि-संबंधी हित रखने तथा इस संपत्ति में अधिमानी अधिकार रखने के आधार पर तथा प्रतिवादी सं. 1 के हक में इसके विक्रय से व्यथित होकर निर्धारित विक्रय प्रतिफल के संदाय पर इसे क्रय करने की इच्छा के साथ कब्जे के लिए अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर वाद फाइल किया कि वह अभी भी भूमि पर काबिज है और उसने इस पर आबादी निर्मित कर ली है ।

6. प्रतिवादी सं. 1 ने अन्य बातों के साथ-साथ इस आधार पर वाद का विरोध किया कि वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है और न ही वादी को सुने जाने का अधिकार है और न ही वाद फाइल करने के लिए कोई वाद हेतुक उत्पन्न हुआ है । विवादित भूमि संयुक्त भूमि नहीं थी और इसके अतिरिक्त प्रतिवादी सं. 2 को उन्हें अपने भाग को बेचने के सभी अधिकार प्राप्त हैं ।

7. विद्वान् विचारण न्यायालय ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :-

(1) क्या वादी को वाद संपत्ति को अर्जित करने के लिए और यथा अभिकथित कब्जा प्राप्त करने के लिए अधिमानी अधिकार प्राप्त है ? ओ. पी. पी.

(2) क्या वर्तमान प्ररूप में वाद ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है ? ओ. पी. डी.

(3) क्या वादी को वर्तमान वाद फाइल करने का कोई अधिकार नहीं है ? ओ. पी. डी.

(4) क्या वादी के पास कोई वाद हेतुक नहीं है ? ओ. पी. डी.

(5) क्या वादी अपने कार्य और आचरण द्वारा यह वाद फाइल करने से विबद्ध है ? ओ. पी. डी.

(6) अनुतोष ।

8. विद्वान् विचारण न्यायालय ने पूर्ण विचारण करने और दोनों पक्षों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् विवाद्यक सं. 1 का उत्तर देते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि वादी ने यह उपदर्शित करने वाला कोई साक्ष्य पेश नहीं किया है कि उसने प्रतिवादी सं. 2 को उसका भाग क्रय करने के लिए कोई प्रस्ताव किया था तथापि, प्रतिवादी सं. 2 ने संपत्ति उसे विक्रीत करने से इनकार कर दिया । अत: विवाद्यक सं. 1 का वादी के विरुद्ध उत्तर दिया गया जबकि शेष विवाद्यकों का प्रतिवादियों के विरुद्ध उत्तर दिया गया । अन्तत: वाद खारिज किया गया था । विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने अपील खारिज करते हुए विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की ।

9. आक्षेपित निर्णय और डिक्री की वैधता और विधिमान्यता को विभिन्न आधारों पर प्रश्नगत किया गया है तथापि, मुख्यतया इस आधार पर प्रश्नगत किया गया है कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का इसके सही परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन नहीं किया गया है क्योंकि दस्तावेज प्रदर्श पी. डब्ल्यू.-1/ए के अनुसार वाद भूमि संयुक्त हिन्दू सहदायिकी संपत्ति के लिए स्थापित थी । इसका केवल एक छोटा भाग इस दस्तावेज में बरानी के रूप में उपदर्शित किया गया है जबकि शेष भूमि कृषि भूमि के रूप में उपदर्शित की गई है और इसलिए हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 22 के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंध पूर्णतया लागू होते हैं । ये निष्कर्ष कि वाद भूमि कृषि भूमि है इसलिए अधिनियम की धारा 22 के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंध लागू नहीं होते हैं, अवैध और तथ्यात्मक परिस्थिति के अनुकूल नहीं कहे जा सकते क्योंकि वाद भूमि के ऊपर सन्निर्मित-आबादी भी मौजूद है । इन निष्कर्षों को कि विक्रय विलेख सं. 628 की प्रति के अभाव में सामान्यतया उसके संबंध में घोषणा अकृत और शून्य है और वादी के ऊपर आबद्धकर नहीं है, मामूली रूप से नहीं लिया जा सकता क्योंकि अपीलार्थी-वादी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेल के लिए यह

आवश्यक था कि वह साक्ष्य में इसे पेश करें । उन्हें इस दोष के कारण जैसाकि विद्वान् काउंसेल से संबद्ध किया गया है, नुकसान नहीं पहुंचाया जा सकता । अपीलार्थी-वादी को वाद भूमि में सह-भागीदार होने के नाते भूमि क्रय करने का अधिमानी अधिकार प्राप्त है । इन निष्कर्षों को भी कि वादी ने प्रतिवादी सं. 2 के अंश की भूमि को क्रय करने के लिए प्रस्ताव नहीं किया, अवैध और त्रुटिपूर्ण कहा जा सकता है क्योंकि अपीलार्थी-वादी के अनुसार ऐसी कोई विधिक अपेक्षा नहीं है और प्रतिवादी सं. 2 ने भी यह प्रकट नहीं किया है वह प्रतिवादी सं. 1 को या किसी अन्य व्यक्ति को वाद-भूमि को विक्रीत करना चाहता था । यदि उसके द्वारा ऐसा कोई आशय प्रकट किया जाता तो वादी निश्चित रूप से इसे क्रय करने के लिए अपना प्रस्ताव पेश करता ।

10. यह अपील विधि के निम्नलिखित सारभूत प्रश्नों पर ग्रहण की गई है :–

> 1. क्या अभिलेख पर उपलब्ध मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य के गलत परिशीलन और विधि और तथ्यों के गलत मूल्यांकन और गलत निर्वचन के आधार पर मुख्य अपील में आक्षेपाधीन निर्णय और डिक्री अनुचित और दूषित होने के कारण विधित: कायम रखे जाने योग्य नहीं है ?
>
> 2. क्या निष्कर्ष रूप में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 22 के अधीन उल्लिखित उपबंध विधिक रूप से और तथ्यात्मक रूप से कायम रखे जाने योग्य नहीं है ?

11. आरंभत: इस न्यायालय द्वारा **रोशन लाल** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय का निर्देश करना वांछनीय है । इस निर्णय में अभिव्यक्त मतानुसार अधिनियम की धारा 22 के अधीन उल्लिखित 'संपत्ति' पद में कृषि भूमि सहित सभी प्रकार की संपत्तियां सम्मिलित हैं । इस न्यायालय द्वारा मामले में अपनाए गए मत का उच्चतम न्यायालय द्वारा **वैज नाथ और अन्य** बनाम **गुरम्मा और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय से समर्थन होता है । इस न्यायालय

---

[1] ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 555 = (1999) 1 एस. सी. सी. 292.

द्वारा **रोशन लाल** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अभिव्यक्त मत नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "हम विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा मामले में अभिव्यक्त इस मत से पूर्णतया सहमत हैं कि 'संपत्ति' पद में कृषि भूमि सहित सभी प्रकार की संपत्तियां सम्मिलित हैं और इस मत का उच्चतम न्यायालय द्वारा **वैज नाथ** (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय से समर्थन होता है । इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने संपत्ति पर हिन्दू स्त्रियों के अधिकार अधिनियम, 1937 के उपबंधों पर विचार किया था जिसमें 'संपत्ति' शब्द की परिभाषा नहीं दी गई है जो तथ्यत: उस स्थिति के समान ही है जिस कानून पर हम इस मामले में विचार कर रहे हैं । यह उल्लेखनीय है कि स्त्रियों से संबंधित विधियां न केवल कठिनाइयों को दूर करने के लिए अधिनियमित की गई हैं अपितु स्त्रियों और विधवाओं को कतिपय अधिकार प्रदान करने के लिए भी अधिनियमित की गई हैं ।
>
> अत: अधिनियम की धारा 22 के अधीन अन्तर्विष्ट उपबंधों का माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा स्थापित उपर्युक्त विधिक सिद्धांतों को दृष्टिगत करते हुए निर्वचन किया जाना चाहिए और समझा जाना चाहिए । हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 22 में ऐसा कुछ उल्लिखित नहीं है जो 'कृषि भूमि' पर इसके प्रवर्तन को प्रतिषिद्ध करे और इस संबंध में 'बंजर कदीम' और 'गैर-मुमकिन' (जो वर्तमान मुकदमे में विवाद की विषयवस्तु है) सहित अन्य किसी प्रकार की भूमि के मामले में भी इसके प्रवर्तन को प्रतिषिद्ध नहीं करती । तथ्यत: अधिनियम की धारा 22 में उल्लिखित 'जंगम संपत्ति' पद में 'कृषि भूमि' सहित सभी प्रकार की भूमियां आती हैं ।"

12. **रोशन लाल** (पूर्वोक्त) वाले मामले में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में धारा 22 के निगमन द्वारा विधि निर्माताओं ने इसकी व्याप्ति और उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए इस प्रकार स्पष्ट किया है :–

"अत: कतिपय मामलों में अन्य वारिसों को संपत्ति अर्जित करने के लिए अधिनियम की धारा 22 के अधीन यथा परिकल्पित वारिस (वारिसों) को अधिमानी अधिकार प्रदत्त करने के पीछे आशय यह है कि संपदा के खंडकरण को रोकने के एकमात्र उद्देश्य के साथ कुटुम्बीय कारबार तथा संपदा में अजनबियों के प्रवेश को रोका जाए । हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के आरंभ के पश्चात् यदि अनुसूची के वर्ग I में विनिर्दिष्ट दो या अधिक वारिसों को न्यागत किसी निर्वसीयती द्वारा चलाए जा रहे कारबार अथवा किसी जंगम संपत्ति में हित को यदि ऐसा कोई वारिस संपत्ति में अपने हित या कारबार को अंतरित करने का प्रस्ताव करता या करती है तो अन्य वारिसों को प्रस्तावित अंतरण में ऐसे हित को उपार्जित करने के लिए अधिमानी अधिकार प्राप्त होगा । ऐसे हित के उपार्जन के लिए विचारणा या तो ऐसे दो वारिसों के बीच परस्पर सहमति द्वारा हो सकती है अथवा ऐसी किसी सहमति के अभाव में हो सकती है, और तब मामले का विनिश्चय अधिनियम की धारा 22 के अधीन फाइल किए जाने वाले किसी आवेदन पर न्यायालय द्वारा किया जाएगा । यदि अधिनियम की धारा 22 के प्रवर्तन को 'कृषि भूमि' के मामले में विवर्जित कर दिया जाए तो इसमें उल्लिखित ऐसे लाभकारी उपबंधों का सम्पूर्ण प्रयोजन ही विफल हो जाएगा ।

जैसाकि उपरोक्त पैरा में मेरे भ्राता माननीय न्यायमूर्ति करोल द्वारा उल्लेख किया गया है, 'कृषि भूमि' को अधिनियम की धारा 22 के लागू होने के संबंध में दो भिन्न-भिन्न मत हैं । अधिनियम की धारा 22(1) केवल जंगम संपत्तियों का और कारबार का निर्देश करती है । हमारे सुविचारित मतानुसार 'जंगम संपत्ति' पद पूर्ण रूप से विस्तृत है जिसमें कृषि भूमि (भूमियां) सम्मिलित हैं और इस विषय में अन्य कोई भूमि जिसमें 'बंजर कदीम' और 'गैर-मुमकिन' भूमियां सम्मिलित हैं, वर्तमान मुकदारी में विवाद की विषयवस्तु हैं ।

जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है इसके पीछे उद्देश्य अत्यंत

महत्वूपर्ण है अर्थात् जोतों के खंडकरण को रोकना और किसी निर्वसीयती द्वारा अपने पीछे छोड़ी गई जंगम संपत्ति और कारबार में अपरिचितों के प्रवेश को रोकना है और इन सबके ऊपर स्वर्ग में बैठे हुए निर्वसीयती की आत्मा को यह शांति प्रदान करना है कि उसकी मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकारी उसके द्वारा छोड़ी गई संपदा/कारबार में किसी तीसरे व्यक्ति अथवा अपरिचित की प्रविष्टि को अनुज्ञात नहीं करेंगे ।"

13. **रोशन लाल** (पूर्वोक्त) वाले मामले के निर्णय में अभिव्यक्त मत को दृष्टिगत करते हुए मैं इस बात से सहमत नहीं हूं कि दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित ये निष्कर्ष कि अपीलार्थी-वादी ने अपने भाई प्रतिवादी सं. 2 के भाग की सीमा तक भूमि को क्रय करने के लिए इस कारण प्रस्ताव नहीं किया कि पूर्वोक्त निर्णय में यह उल्लेख किया गया है कि कोई निष्ठावान सह-अंशधारी कभी-कभी प्रश्नगत संपत्ति में अपने भाग को विक्रीत करने के लिए अन्य सह-भागीदार को अपना आशय प्रकट नहीं करता । अत: विधायी आशय यह है कि प्रतिवादी सं. 2 का यह दायित्व था कि वह वादी को प्रश्नगत भूमि में अपने भाग को विक्रीत करने के लिए अपना आशय व्यक्त करते हुए उससे क्रय करने के लिए यदि वह हितबद्ध हो, कहता । अत: वादी यह दावा करने में पूर्णतया न्यायोचित है कि उसे इस बात की जानकारी नहीं थी कि प्रतिवादी सं. 2 प्रश्नगत भूमि प्रतिवादी सं. 1 को विक्रीत करने का आशय रखता है । यह सही है कि प्रतिवादी सं. 2 ने तारीख 28 मई, 1996 के विक्रय विलेख द्वारा भूमि विक्रीत कर दी है । यद्यपि विक्रय विलेख साक्ष्य में पेश नहीं किया गया है तथापि, इस बारे में कोई इनकार नहीं किया गया है और इसके बजाय प्रतिवादी सं. 1 ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि उसने प्रश्नगत भूमि तारीख 28 मई, 1996 के विक्रय विलेख सं. 628 द्वारा भूमि क्रय की है । अत: इसके प्रतिकूल निष्कर्ष कि साक्ष्य में विक्रय विलेख को पेश किए बिना इसके रद्दकरण का आदेश नहीं किया जा सकता, विधित: कायम रखे जाने योग्य नहीं है । यह उल्लेखनीय है कि **रोशन लाल** (पूर्वोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय का निर्णय उस स्थिति के बारे में उल्लेख करता है जब

भूमि पहले ही विक्रीत कर दी गई हो और विक्रय विलेख रजिस्ट्रीकृत हो गया हो क्योंकि यह अभिनिर्धारित किया गया है कि पूर्व में पूर्ण किए गए विक्रय संव्यवहार को पुन: खोला जा सकता है, निस्संदेह विक्रय प्रतिफल के संदाय पर चाहे वह परस्पर सहमति के आधार पर हो अथवा बाजार में विद्यमान भूमि की दरों पर । अत: इस अपील में निर्धारण के लिए यथा उद्भूत विधि के दूसरे सारभूत प्रश्न का तद्नुसार उत्तर दिया जाता है और यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि दोनों ही निचले न्यायालयों ने हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 22 के अधीन उल्लिखित उपबंधों पर इसके सही परिप्रेक्ष्य में विचार नहीं किया है और तद्द्वारा यथा अभिलिखित निष्कर्ष दूषित हैं ।

14. अब हम विधि के प्रथम सारभूत प्रश्न पर विचार करने के लिए अग्रसर होते हैं । तथ्यों के आधार पर संविवाद अधिक गंभीर नहीं है क्योंकि वादी और प्रतिवादी सं. 2 को उनके पूर्वजों से वाद भूमि विरासत में मिली है । दोनों निचले न्यायालयों ने इसे सहदायिकी संपत्ति होना अभिनिर्धारित किया है । संपत्ति वादी और प्रतिवादी सं. 2 को उनके पिता सरन की मृत्यु होने पर विरासत में मिली है । मामले के इस पहलू के संबंध में कोई भी विवाद नहीं है । वादपत्र के पैरा 4 में इन प्रकथनों को कि प्रतिवादी सं. 1 ने वाद भूमि तारीख 28 मई, 1996 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख सं. 628 द्वारा 15,000/- रुपए के बदले क्रय की है, लिखित कथन के पैरा 4 में विनिर्दिष्ट रूप से नहीं नकारा गया है । अत: प्रतिवादी सं. 1 की इस संबंध में खामोशी उसके स्वीकृति के बराबर है जिसका यह अर्थ है कि उसने वाद भूमि 15,000/- रुपए की धनराशि के बदले प्रतिवादी सं. 2 से क्रय की थी । प्रतिवादी सं. 1 की स्वयं की संस्वीकृति को दृष्टिगत करते हुए दोनों निचले न्यायालयों ने त्रुटिपूर्ण रूप से यह निष्कर्ष निकाला है कि विक्रय विलेख अभिलेख पर न होने के कारण इसे रद्द नहीं किया जा सकता और चूंकि इसके निष्पादन के बारे में कोई विवाद नहीं है इसलिए विक्रय विलेख साक्ष्य में पेश किए जाने की आवश्यकता नहीं थी । अन्यथा भी यह विद्वान् काउंसेल की जिम्मेदारी थी कि वह इसे साक्ष्य में पेश करते । अत: वादी का प्रतिनिधित्व करने वाले विद्वान् काउंसेल के व्यतिक्रम के लिए, यदि

कोई हो, वादी को नुकसान नहीं पहुंचाया जा सकता । अत: मामले के तथ्यों और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य का दोनों निचले न्यायालयों द्वारा गलत मूल्यांकन और गलत निर्वचन किया गया है और परिणामत: दोनों निचले न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष दूषित हैं और इसलिए विधित: कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं । विधि के प्रथम सारभूत प्रश्न का भी तद्नुसार उत्तर दिया जाता है ।

15. उपर्युक्त सभी कारणों से आक्षेपित निर्णय और डिक्री विधित: और तथ्यत: कायम रखे जाने योग्य नहीं है । अत: इसे अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । परिणामत: वाद डिक्री किया जाता है और वादी के बारे में यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि वह इस प्रयोजन के लिए हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 22 के अधीन आवेदन फाइल किए जाने पर सक्षम न्यायालय द्वारा यथा सहमत अथवा निर्धारित विक्रय-प्रतिफल का संदाय करने पर अपने अधिमानी अधिकार के प्रयोग द्वारा वाद भूमि का कब्जा पाने का हकदार है । जहां तक प्रतिवादी सं. 2 द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के हक में वाद भूमि के संबंध में तारीख 28 मई, 1996 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख सं. 628 का संबंध है, अवैध, अकृत और शून्य अभिनिर्धारित किया जाता है और इसलिए अभिखंडित किया जाता है । तथापि, मामले की विशिष्ट परिस्थितियों में पक्षकारों को अपना-अपना खर्चा स्वयं वहन करने का निदेश किया जाता है ।

16. तद्नुसार अपील मंजूर करते हुए इसका निपटान किया जाता है और इसके साथ ही साथ लंबित आवेदनों, यदि कोई हों, को भी निपटाया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

मह.

संसद् के अधिनियम

राजभाषा अधिनियम, 1963

(यथासंशोधित, 1967)

(1963 का अधिनियम संख्यांक 19)

[10 मई, 1963]

उन भाषाओं का, जो संघ के राजकीय प्रयोजनों, संसद् में कार्य के संव्यवहार, केंद्रीय और राज्य अधिनियमों और उच्च न्यायालयों में कतिपय प्रयोजनों के लिए प्रयोग में लाई जा सकेंगी, उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के चौदहवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

1. **संक्षिप्त नाम और प्रारंभ** – (1) यह अधिनियम राजभाषा अधिनियम, 1963 कहा जा सकेगा ।

(2) धारा 3, जनवरी, 1965 के 26वें दिन को प्रवृत्त होगी इस अधिनियम के शेष उपबंध उस तारीख[1] को प्रवृत्त होंगे जिसे केंद्रीय

---

[1] तारीख 10 जनवरी, 1965 को धारा 5(1) प्रवृत्त हुई, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी), भाग 2, अनुभाग 3(ii), पृष्ठ 128 पर प्रकाशित अधिसूचना संख्यांक का. आ. 94, तारीख 4 जनवरी, 1965 ; तारीख 19 मई, 1969 को धारा 6 प्रवृत्त हुई, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी) भाग 2, अनुभाग (3)(ii), पृष्ठ 2024 पर प्रकाशित अधिसूचना संख्यांक का. आ. 1945 ; तारीख 14 मई, 1969 ; तारीख 7 मार्च, 1970 को धारा 7 प्रवृत्त हुई, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी), भाग 2, अनुभाग 3(ii) में प्रकाशित अधिसूचना संख्यांक का. आ. 841, तारीख 26 फरवरी, 1970 ; तारीख 1 अक्तूबर, 1976 को धारा 5(2) प्रवृत्त हुई, देखिए भारत का राजपत्र (अंग्रेजी), भाग 2, अनुभाग 3(ii) पृष्ठ 1901 पर प्रकाशित अधिसूचना संख्यांक का. आ. 655 (अ), तारीख 5 अक्तूबर, 1976 ।

सरकार, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे और इस अधिनियम के विभिन्न उपबंधों के लिए विभिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "नियत दिन" से, धारा 3 के संबंध में, जनवरी, 1965 का 26वां दिन अभिप्रेत है और इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध के संबंध में वह दिन अभिप्रेत है जिस दिन को वह उपबंध प्रवृत्त होता है ;

(ख) "हिन्दी" से वह हिन्दी अभिप्रेत है जिसकी लिपि देवनागरी है ।

[1][3. **संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए और संसद् में प्रयोग के लिए अंग्रेजी भाषा का बना रहना** – (1) संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की कालावधि की समाप्ति हो जाने पर भी, हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा, नियत दिन से ही, –

(क) संघ के उन सब राजकीय प्रयोजनों के लिए जिनके लिए यह उस दिन से ठीक पहले प्रयोग में लाई जाती थी ; तथा

(ख) संसद् में कार्य के संव्यवहार के लिए,

प्रयोग में लाई जाती रह सकेगी :

परंतु संघ और किसी ऐसे राज्य के बीच, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा प्रयोग में लाई जाएगी :

परंतु यह और कि जहां किसी ऐसे राज्य के, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाया है और किसी अन्य राज्य के, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, बीच पत्रादि के

---

[1] 1968 के अधिनियम संख्यांक 1 की धारा 2 द्वारा धारा 3 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

प्रयोजनों के लिए हिन्दी को प्रयोग में लाया जाता है, वहां हिन्दी में ऐसे पत्रादि के साथ-साथ उसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में भेजा जाएगा :

परंतु यह और भी कि इस उपधारा की किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह किसी ऐसे राज्य को, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संघ के साथ या किसी ऐसे राज्य के साथ, जिसने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में अपनाया है, या किसी अन्य राज्य के साथ, उसकी सहमति से, पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिन्दी को प्रयोग में लाने से निवारित करती है, और ऐसे किसी मामले में उस राज्य के साथ पत्रादि के प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग बाध्यकर न होगा ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां पत्रादि के प्रयोजनों के लिए हिन्दी या अंग्रेजी भाषा –

(i) केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और दूसरे मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के बीच ;

(ii) केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग या कार्यालय के और केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी या उसके किसी कार्यालय के बीच ;

(iii) केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी या उसके किसी कार्यालय के और किसी अन्य ऐसे निगम या कंपनी या कार्यालय के बीच ;

प्रयोग में लाई जाती है वहां उस तारीख तक, जब तक पूर्वोक्त संबंधित मंत्रालय, विभाग, कार्यालय या निगम या कंपनी का कर्मचारिवृन्द हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता, ऐसे पत्रादि का अनुवाद, यथास्थिति, अंग्रेजी भाषा या हिन्दी में भी दिया जाएगा ।

(3) उपधारा (1) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, हिन्दी और अंग्रेजी भाषा दोनों ही –

(i) संकल्पों, साधारण आदेशों, नियमों, अधिसूचनाओं,

प्रशासनिक या अन्य प्रतिवेदनों या प्रेस विज्ञप्तियों के लिए, जो केंद्रीय सरकार द्वारा या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी द्वारा या ऐसे निगम या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निकाले जाते हैं या किए जाते हैं ;

(ii) संसद् के किसी सदन या सदनों के समक्ष रखे गए प्रशासनिक तथा अन्य प्रतिवेदनों और राजकीय कागजपत्रों के लिए ;

(iii) केंद्रीय सरकार या उसके किसी मंत्रालय, विभाग या कार्यालय द्वारा या उसकी ओर से या केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में के या नियंत्रण में के किसी निगम या कंपनी द्वारा या ऐसे निगम या कंपनी के किसी कार्यालय द्वारा निष्पादित संविदाओं और करारों के लिए तथा निकाली गई अनुज्ञप्तियों, अनुज्ञापत्रों, सूचनाओं और निविदा प्ररूपों के लिए,

प्रयोग में लाई जाएगी ।

(4) उपधारा (1) या उपधारा (2) या उपधारा (3) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना यह है कि केंद्रीय सरकार धारा 8 के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा उस भाषा या उन भाषाओं का उपबंध कर सकेगी जिसे या जिन्हें संघ के राजकीय प्रयोजन के लिए, जिसके अंतर्गत किसी मंत्रालय, विभाग, अनुभाग या कार्यालय का कार्यकरण है, प्रयोग में लाया जाना है और ऐसे नियम बनाने में राजकीय कार्य के शीघ्रता और दक्षता के साथ निपटारे का तथा जनसाधारण के हितों का सम्यक् ध्यान रखा जाएगा और इस प्रकार बनाए गए नियम विशिष्टतया यह सुनिश्चित करेंगे कि जो व्यक्ति संघ के कार्यकलाप के संबंध में सेवा कर रहे हैं और जो या तो हिन्दी में या अंग्रेजी भाषा में प्रवीण हैं वे प्रभावी रूप से अपना काम कर सकें और यह भी कि केवल इस आधार पर कि वे दोनों ही भाषाओं में प्रवीण नहीं हैं उनका कोई अहित नहीं होता है ।

(5) उपधारा (1) के खंड (क) के उपबंध और उपधारा (2), उपधारा

(3) और उपधारा (4) के उपबंध तब तक प्रवृत्त बने रहेंगे जब तक उनमें वर्णित प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग समाप्त कर देने के लिए ऐसे सभी राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा, जिन्होंने हिन्दी को अपनी राजभाषा के रूप में नहीं अपनाया है, संकल्प पारित नहीं कर दिए जाते और जब तक पूर्वोक्त संकल्पों पर विचार कर लेने के पश्चात् ऐसी समाप्ति के लिए संसद् के हर एक सदन द्वारा संकल्प पारित नहीं कर दिया जाता ।]

4. **राजभाषा के संबंध में समिति** – (1) जिस तारीख को धारा 3 प्रवृत्त होती है उससे दस वर्ष की समाप्ति के पश्चात्, राजभाषा के संबंध में एक समिति, इस विषय का संकल्प संसद् के किसी भी सदन में राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी से प्रस्तावित और दोनों सदनों द्वारा पारित किए जाने पर गठित की जाएगी ।

(2) इस समिति में तीस सदस्य होंगे जिनमें से बीस लोक सभा के सदस्य होंगे तथा दस राज्य सभा के सदस्य होंगे, जो क्रमशः लोक सभा के सदस्यों तथा राज्य सभा के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे ।

(3) इस समिति का कर्तव्य होगा कि वह संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए हिन्दी के प्रयोग में की गई प्रगति का पुनर्विलोकन करे और उस पर सिफारिशें करते हुए, राष्ट्रपति को प्रतिवेदन करे और राष्ट्रपति उस प्रतिवेदन को संसद् के हर एक सदन के समक्ष रखवाएगा और सभी राज्य सरकारों को भिजवाएगा ।

(4) राष्ट्रपति उपधारा (3) में निर्दिष्ट प्रतिवेदन पर और उस पर राज्य सरकारों ने यदि कोई मत अभिव्यक्त किए हों तो उन पर विचार करने के पश्चात् उस समस्त प्रतिवेदन के या उसके किसी भाग के अनुसार निदेश निकाल सकेगा :

[1][परंतु इस प्रकार निकाले गए निदेश धारा 3 के उपबंधों से असंगत

---

[1] 1968 के अधिनियम संख्यांक 1 की धारा 3 द्वारा अंतःस्थापित ।

नहीं होंगे ।]

5. **केन्द्रीय अधिनियमों आदि का प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद** – (1) नियत दिन को और उसके पश्चात् शासकीय राजपत्र में राष्ट्रपति के प्राधिकार से प्रकाशित –

(क) किसी केंद्रीय अधिनियम का या राष्ट्रपति द्वारा प्रख्यापित किसी अध्यादेश का, अथवा

(ख) संविधान के अधीन या किसी केंद्रीय अधिनियम के अधीन निकाले गए किसी आदेश, नियम, विनियम या उपविधि का,

हिन्दी में अनुवाद उसका हिन्दी में प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा ।

(2) नियत दिन* से ही उन सब विधेयकों के, जो संसद् के किसी भी सदन में पुरःस्थापित किए जाने हों और उन सब संशोधनों के, जो उनके संबंध में संसद् के किसी भी सदन में प्रस्तावित किए जाने हों, अंग्रेजी भाषा के प्राधिकृत पाठ के साथ-साथ उनका हिन्दी में अनुवाद भी होगा जो ऐसी रीति से प्राधिकृत किया जाएगा, जो इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित की जाए ।

6. **कतिपय दशाओं में राज्य अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी अनुवाद** – जहां किसी राज्य के विधान-मंडल ने उस राज्य के विधान-मंडल द्वारा पारित अधिनियमों में अथवा उस राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों में प्रयोग के लिए हिन्दी से भिन्न कोई भाषा विहित की है वहां, संविधान के अनुच्छेद 348 के खंड (3) द्वारा अपेक्षित अंग्रेजी भाषा में उसके अनुवाद के अतिरिक्त, उसका हिन्दी में अनुवाद उस राज्य के शासकीय राजपत्र में, उस राज्य के राज्यपाल के प्राधिकार से, नियत दिन को या उसके पश्चात् प्रकाशित किया जा सकेगा और ऐसी दशा में ऐसे किसी अधिनियम या अध्यादेश का हिन्दी

---

* 1.10.1976 – देखिए भारत का राजपत्र असाधारण, भाग 2, खंड 3(ii) तारीख 6.10.1976 [का. आ. 655 (अ.) तारीख 1.10.1976].

में अनुवाद हिन्दी भाषा में उसका प्राधिकृत पाठ समझा जाएगा ।

7. **उच्च न्यायालयों के निर्णयों आदि में हिन्दी या अन्य राजभाषा का वैकल्पिक प्रयोग** – नियत दिन से ही या तत्पश्चात् किसी भी दिन से किसी राज्य का राज्यपाल, राष्ट्रपति की पूर्व सम्मति से, अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिन्दी या उस राज्य की राजभाषा का प्रयोग, उस राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा पारित या दिए गए किसी निर्णय, डिक्री या आदेश के प्रयोजनों के लिए प्राधिकृत कर सकेगा और जहां कोई निर्णय, डिक्री या आदेश (अंग्रेजी भाषा से भिन्न) ऐसी किसी भाषा में पारित किया या दिया जाता है वहां उसके साथ-साथ उच्च न्यायालय के प्राधिकार से निकाला गया अंग्रेजी भाषा में उसका अनुवाद भी होगा ।

8. **नियम बनाने की शक्ति** – (1) केंद्रीय सरकार इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए, नियम, शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, बना सकेगी ।

[1][(2) इस धारा के अधीन बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । वह अवधि एक सत्र में, अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् यह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई

---

[1] 1986 के अधिनियम संख्यांक 4 की धारा 2 और अनुसूची द्वारा (15.5.1986 से) उपधारा (2) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।]

9. **कतिपय उपबंधों का जम्मू-कश्मीर को लागू न होना** – धारा 6 और धारा 7 के उपबंध जम्मू-कश्मीर राज्य को लागू न होंगे ।

गृह मंत्रालय के दिनांक 18 जनवरी, 1968 का संकल्प संख्यांक एफ. 5/8/65-रा.भा.

संकल्प

संख्यांक एफ. 5/8/65 – रा. भा. – संसद् के दोनों सदनों में पारित निम्नलिखित सरकारी संकल्प आम जानकारी के लिए प्रकाशित किया जाता है :–

"जबकि संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा हिन्दी रहेगी और उसके अनुच्छेद 351 के अनुसार हिन्दी भाषा की प्रसार वृद्धि करना और उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, संघ का कर्तव्य है ;

यह सभा संकल्प करती है कि हिन्दी के प्रसार एवं विकास की गति बढ़ाने के हेतु तथा संघ के विभिन्न राजकीय प्रयोजनों के लिए उत्तरोत्तर इसके प्रयोग के हेतु भारत सरकार द्वारा एक अधिक गहन एवं व्यापक कार्यक्रम तैयार किया जाएगा और उसे कार्यान्वित किया जाएगा और किए जाने वाले उपायों एवं की जाने वाली प्रगति की विस्तृत वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट संसद् की दोनों सभाओं के पटल पर रखी जाएगी, और सब राज्य सरकारों को भेजी जाएगी ;

2. जबकि संविधान की आठवीं अनुसूची में हिन्दी के अतिरिक्त भारत की 14 मुख्य भाषाओं का उल्लेख किया गया है, और देश की शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि इन भाषाओं के पूर्ण विकास के हेतु सामूहिक उपाय किए जाने चाहिए ;

यह सभा संकल्प करती है कि हिन्दी के साथ-साथ सब भाषाओं के समन्वित विकास के हेतु भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के सहयोग से एक कार्यक्रम तैयार किया जाएगा और उसे कार्यान्वित किया जाएगा ताकि वे शीघ्र समृद्ध हों और आधुनिक ज्ञान के संचार का प्रभावी माध्यम बनें ;

3. जबकि एकता की भावना के संवर्द्धन तथा देश के विभिन्न भागों में जनता में संचार की सुविधा के हेतु यह आवश्यक है कि भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के परामर्श से तैयार किए गए त्रै-भाषा सूत्र को सभी राज्यों में पूर्णतया कार्यान्वित करने के लिए प्रभावी उपाय किए जाने चाहिए ;

यह सभा संकल्प करती है कि हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में, हिन्दी तथा अंग्रेजी के अतिरिक्त एक आधुनिक भारतीय भाषा के दक्षिण भारत की भाषाओं में से किसी एक को तरजीह देते हुए और अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में प्रादेशिक भाषाओं एवं अंग्रेजी के साथ-साथ हिन्दी के अध्ययन के लिए उस सूत्र के अनुसार प्रबन्ध किया जाना चाहिए ;

4. और जबकि यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि संघ की लोक सेवाओं के विषय में देश के विभिन्न भागों के लोगों के न्यायोचित दावों और हितों का पूर्ण परित्राण किया जाए ;

यह सभा संकल्प करती है :–

(क) कि उन विशेष सेवाओं अथवा पदों को छोड़कर जिनके लिए ऐसी किसी सेवा अथवा पद के कर्तव्यों के संतोषजनक निष्पादन के हेतु केवल अंग्रेजी अथवा केवल हिन्दी अथवा दोनों जैसी कि स्थिति हो, का उच्च-स्तर का ज्ञान आवश्यक समझा जाए, संघ सेवाओं अथवा पदों के लिए भर्ती करने के हेतु उम्मीदवारों के चयन के समय हिन्दी अथवा अंग्रेजी में से किसी एक का ज्ञान अनिवार्यतः अपेक्षित होगा ; और

(ख) कि परीक्षाओं की भावी योजना, प्रक्रिया संबंधी पहलुओं एवं समय के विषय में संघ लोक सेवा आयोग के विचार जानने के पश्चात् अखिल भारतीय एवं उच्चतर केंद्रीय सेवाओं संबंधी परीक्षाओं के लिए संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित सभी भाषाओं तथा अंग्रेजी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में रखने की अनुमति होगी ।"

नियम

राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976

(यथासंशोधित, 1987, 2007 तथा 2011)

सा. का. नि. 1052 – राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19) की धारा 3 की उपधारा (4) के साथ पठित धारा 8 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए, केंद्रीय सरकार निम्नलिखित नियम बनाती है, अर्थात् :–

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ** – (क) इन नियमों का संक्षिप्त नाम राजभाषा (संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग) नियम, 1976 है ।

(ख) इनका विस्तार तमिलनाडु राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

(ग) ये राजपत्र में प्रकाशन की तारीख* को प्रवृत्त होंगे ।

2. **परिभाषाएं** – इन नियमों में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो :–

(क) "अधिनियम" से राजभाषा अधिनियम, 1963 (1963 का 19) अभिप्रेत है ;

(ख) "केंद्रीय सरकार के कार्यालय" के अन्तर्गत निम्नलिखित भी है, अर्थात् :–

(क) केंद्रीय सरकार का कोई मंत्रालय, विभाग या कार्यालय ;

---

* 17 जुलाई, 1976, देखिए अधिसूचना सं. सा.का.नि. 1052, तारीख 28-6-1976 – भारत का राजपत्र, भाग 2, खंड 3 (i), तारीख 17-7-1976, पृष्ठ 1967.

(ख) केंद्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किसी आयोग, समिति या अधिकरण का कोई कार्यालय ; और

(ग) केंद्रीय सरकार के स्वामित्व में या नियंत्रण के अधीन किसी निगम या कंपनी का कोई कार्यालय ;

(ग) "कर्मचारी" से केंद्रीय सरकार के कार्यालय में नियोजित कोई व्यक्ति अभिप्रेत है ;

(घ) "अधिसूचित कार्यालय" से नियम 10 के उपनियम (4) के अधीन अधिसूचित कार्यालय अभिप्रेत है ;

(ङ) "हिन्दी में प्रवीणता" से नियम 9 में वर्णित प्रवीणता अभिप्रेत है ;

(च) क्षेत्र "क" से बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, उत्तराखंड, राजस्थान और उत्तर प्रदेश राज्य तथा अंडमान और निकोबार दीव समूह, दिल्ली संघ राज्यक्षेत्र अभिप्रेत हैं ;

(छ) क्षेत्र "ख" से गुजरात, महाराष्ट्र और पंजाब राज्य तथा चण्डीगढ़, दमण और दीव तथा दादरा और नगर हवेली संघ राज्यक्षेत्र अभिप्रेत हैं ;

(ज) क्षेत्र "ग" से खण्ड (च) और (छ) में निर्दिष्ट राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों से भिन्न राज्य तथा संघ राज्यक्षेत्र अभिप्रेत हैं ;

(झ) "हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान" से नियम 10 में वर्णित कार्यसाधक ज्ञान अभिप्रेत है ।

3. **राज्यों आदि और केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से भिन्न कार्यालयों के साथ पत्रादि** – (1) केंद्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र "क" में किसी

राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य या संघ राज्यक्षेत्र में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि, असाधारण दशाओं को छोड़कर हिन्दी में होंगे और यदि उनमें से किसी को कोई पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनके साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा ।

(2) केंद्रीय सरकार के कार्यालय से –

(क) क्षेत्र "ख" में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य या संघ राज्यक्षेत्र में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) को पत्रादि सामान्यतया हिन्दी में होंगे और यदि इनमें से किसी को कोई पत्रादि अंग्रेजी में भेजे जाते हैं तो उनके साथ उनका हिन्दी अनुवाद भी भेजा जाएगा :

परन्तु यदि कोई ऐसा राज्य या संघ राज्यक्षेत्र यह चाहता है कि किसी विशिष्ट वर्ग या प्रवर्ग के पत्रादि या उसके किसी कार्यालय के लिए आशयित पत्रादि सम्बद्ध राज्य या संघ राज्यक्षेत्र की सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट अवधि तक अंग्रेजी या हिन्दी में भेजे जाएं और उसके साथ दूसरी भाषा में उसका अनुवाद भी भेजा जाए तो ऐसे पत्रादि उसी रीति से भेजे जाएंगे ;

(ख) क्षेत्र "ख" के किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में भेजे जा सकते हैं ।

(3) केंद्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र "ग" में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि अंग्रेजी में होंगे ।

(4) उपनियम (1) और (2) में किसी बात के होते हुए भी, क्षेत्र "ग" में केंद्रीय सरकार के कार्यालय से क्षेत्र "क" या क्षेत्र "ख" में किसी राज्य या संघ राज्यक्षेत्र को या ऐसे राज्य में किसी कार्यालय (जो केंद्रीय

सरकार का कार्यालय न हो) या व्यक्ति को पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं :

परंतु हिन्दी में पत्रादि ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अवधारित करे ।

4. **केंद्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि –**

(क) केंद्रीय सरकार के किसी एक मंत्रालय या विभाग और किसी दूसरे मंत्रालय या विभाग के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं ;

(ख) केंद्रीय सरकार के एक मंत्रालय या विभाग और क्षेत्र "क" में स्थित संलग्न या अधीनस्थ कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी में होंगे और ऐसे अनुपात में होंगे जो केंद्रीय सरकार, ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे संबंधित आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए, समय-समय पर अवधारित करे ;

(ग) क्षेत्र "क" में स्थित केंद्रीय सरकार के ऐसे कार्यालयों के बीच, जो खण्ड (क) या खण्ड (ख) में विनिर्दिष्ट कार्यालयों से भिन्न हैं, पत्रादि हिन्दी में होंगे ;

(घ) क्षेत्र "क" में स्थित केंद्रीय सरकार के कार्यालयों और क्षेत्र "ख" या क्षेत्र "ग" में स्थित केंद्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं :

परंतु ये पत्रादि हिन्दी में ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर

अवधारित करे ;

(ङ) क्षेत्र "ख" या क्षेत्र "ग" में स्थित केंद्रीय सरकार के कार्यालयों के बीच पत्रादि हिन्दी या अंग्रेजी में हो सकते हैं :

परन्तु ये पत्रादि हिन्दी में ऐसे अनुपात में होंगे जो केन्द्रीय सरकार ऐसे कार्यालयों में हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों की संख्या, हिन्दी में पत्रादि भेजने की सुविधाओं और उससे आनुषंगिक बातों को ध्यान में रखते हुए समय-समय पर अवधारित करे :

परन्तु जहां ऐसे पत्रादि –

(i) क्षेत्र "क" या क्षेत्र "ख" किसी कार्यालय को संबोधित हैं वहां, यदि आवश्यक हो तो, उनका दूसरी भाषा में अनुवाद, पत्रादि प्राप्त करने के स्थान पर किया जाएगा ;

(ii) क्षेत्र "ग" में किसी कार्यालय को संबोधित है वहां उनका, दूसरी भाषा में अनुवाद, उनके साथ भेजा जाएगा :

परन्तु यह और कि यदि कोई पत्रादि किसी अधिसूचित कार्यालय को सम्बोधित है तो दूसरी भाषा में ऐसा अनुवाद उपलब्ध कराने की अपेक्षा नहीं की जाएगी ।

5. **हिन्दी में प्राप्त पत्रादि के उत्तर** – नियम 3 और नियम 4 में किसी बात के होते हुए भी, हिन्दी में पत्रादि के उत्तर केंद्रीय सरकार के कार्यालय से हिन्दी में दिए जाएंगे ।

6. **हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग** – अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (3) में निर्दिष्ट सभी दस्तावेजों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग किया जाएगा और ऐसे दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने वाले व्यक्तियों का यह उत्तरदायित्व होगा कि वे यह सुनिश्चित कर लें कि ऐसी दस्तावेजें हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही में तैयार की जाती हैं, निष्पादित की जाती हैं और जारी की जाती हैं ।

7. **आवेदन, अभ्यावेदन, आदि** – (1) कोई कर्मचारी आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिन्दी या अंग्रेजी में कर सकता है ।

(2) जब उपनियम (1) में विनिर्दिष्ट कोई आवेदन, अपील या अभ्यावेदन हिन्दी में किया गया हो या उस पर हिन्दी में हस्ताक्षर, किए गए हों, तब उसका उत्तर हिन्दी में दिया जाएगा ।

(3) यदि कोई कर्मचारी यह चाहता है कि सेवा संबंधी विषयों (जिनके अन्तर्गत अनुशासनिक कार्यवाहियां भी हैं) से संबंधित कोई आदेश या सूचना, जिसका कर्मचारी पर तामील किया जाना अपेक्षित है, यथास्थिति, हिन्दी या अंग्रेजी में होनी चाहिए तो वह उसे असम्यक् विलम्ब के बिना उसी भाषा में दी जाएगी ।

8. **केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में टिप्पणों का लिखा जाना** – (1) कोई कर्मचारी किसी फाइल पर टिप्पण या कार्यवृत्त हिन्दी या अंग्रेजी में लिख सकता है और उससे यह अपेक्षा नहीं की जाएगी कि वह उसका अनुवाद दूसरी भाषा में प्रस्तुत करे ।

(2) केंद्रीय सरकार का कोई भी कर्मचारी, जो हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखता है, हिन्दी में किसी दस्तावेज़ के अंग्रेजी अनुवाद की मांग तभी कर सकता है, जब वह दस्तावेज़ विधिक या तकनीकी प्रकृति की है, अन्यथा नहीं ।

(3) यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विशिष्ट दस्तावेज़ विधिक या तकनीकी प्रकृति की है या नहीं तो विभाग या कार्यालय का प्रधान उसका विनिश्चय करेगा ।

(4) उपनियम (1) में किसी बात के होते हुए भी, केंद्रीय सरकार, आदेश द्वारा ऐसे अधिसूचित कार्यालयों को विनिर्दिष्ट कर सकती है जहां ऐसे कर्मचारियों द्वारा, जिन्हें हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है, टिप्पण, प्रारूपण और ऐसे अन्य शासकीय प्रयोजनों के लिए, जो आदेश में विनिर्दिष्ट किए जाएं, केवल हिन्दी का प्रयोग किया जाएगा ।

9. **हिन्दी में प्रवीणता** – यदि किसी कर्मचारी ने –

(क) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर कोई परीक्षा हिन्दी के माध्यम से उत्तीर्ण कर ली है ; या

(ख) स्नातक परीक्षा में अथवा स्नातक परीक्षा की समतुल्य या उससे उच्चतर किसी अन्य परीक्षा में हिन्दी को एक वैकल्पिक विषय के रूप में लिया हो ; या

(ग) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्ररूप में यह घोषणा करता है कि उसे हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है ;

तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त कर ली है ।

10. **हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान** – (1) (क) यदि किसी कर्मचारी ने –

(i) मैट्रिक परीक्षा या उसकी समतुल्य या उससे उच्चतर परीक्षा हिन्दी विषय के साथ उत्तीर्ण कर ली है ; या

(ii) केंद्रीय सरकार की हिन्दी प्रशिक्षण योजना के अन्तर्गत आयोजित प्राज्ञ परीक्षा या, यदि उस सरकार द्वारा किसी विशिष्ट प्रवर्ग के पदों के संबंध में उस योजना के अन्तर्गत कोई निम्नतर परीक्षा विनिर्दिष्ट है, वह परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है ; या

(iii) केंद्रीय सरकार द्वारा उस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अन्य परीक्षा उत्तीर्ण कर ली है ; या

(ख) यदि वह इन नियमों से उपाबद्ध प्ररूप में यह घोषणा करता है कि उसने ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया है ;

तो उसके बारे में यह समझा जाएगा कि उसने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है ।

(2) यदि केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय में कार्य करने वाले कर्मचारियों में से अस्सी प्रतिशत ने हिन्दी का ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लिया

है तो उस कार्यालय के कर्मचारियों के बारे में सामान्यतया यह समझा जाएगा कि उन्होंने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है ।

(3) केंद्रीय सरकार या केंद्रीय सरकार द्वारा इस निमित्त विनिर्दिष्ट कोई अधिकारी यह अवधारित कर सकता है कि केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय के कर्मचारियों ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है या नहीं ।

(4) केंद्रीय सरकार के जिन कार्यालयें में कर्मचारियों ने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है उन कार्यालयों के नाम राजपत्र में अधिसूचित किए जाएंगे :

परन्तु यदि केंद्रीय सरकार की राय है कि किसी अधिसूचित कार्यालय में काम करने वाले और हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले कर्मचारियों का प्रतिशत किसी तारीख में से उपनियम (2) में विनिर्दिष्ट प्रतिशत से कम हो गया है, तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकती है कि उक्त कार्यालय उस तारीख से अधिसूचित कार्यालय नहीं रह जाएगा ।

11. **मैनुअल, संहिताएं, प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य, लेखन सामग्री, आदि** – (1) केंद्रीय सरकार के कार्यालयों से संबंधित सभी मैनुअल, संहिताएं और प्रक्रिया संबंधी अन्य साहित्य हिन्दी और अंग्रेजी में द्विभाषीय रूप में यथास्थिति, मुद्रित या साइक्लोस्टाइल किया जाएगा और प्रकाशित किया जाएगा ।

(2) केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग किए जाने वाले रजिस्टरों के प्ररूप और शीर्षक हिन्दी और अंग्रेजी में होंगे ।

(3) केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय में प्रयोग के लिए सभी नामपट्ट, सूचना पट्ट, पत्रशीर्ष और लिफाफों पर उत्कीर्ण लेख तथा लेखन सामग्री की अन्य मदें हिन्दी और अंग्रेजी में लिखी जाएंगी, मुद्रित या

उत्कीर्ण होंगी :

परन्तु यदि केंद्रीय सरकार ऐसा करना आवश्यक समझती है तो वह, साधारण या विशेष आदेश द्वारा, केंद्रीय सरकार के किसी कार्यालय को इस नियम के सभी या किन्हीं उपबन्धों से छूट दे सकती है ।

12. **अनुपालन का उत्तरदायित्व** – (1) केंद्रीय सरकार के प्रत्येक कार्यालय के प्रशासनिक प्रधान का यह उत्तरदायित्व होगा कि वह -

(i) यह सुनिश्चित करे कि अधिनियम और इन नियमों के उपबन्धों उपनियम (2) के अधीन जारी किए गए निदेशों का समुचित रूप से अनुपालन हो रहा है ; और

(ii) इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त और प्रभावकारी जांच के लिए उपाय करें ।

(2) केंद्रीय सरकार अधिनियम और इन नियमों के उपबन्धों के सम्यक् अनुपालन के लिए अपने कर्मचारियों और कार्यालयों को समय-समय पर आवश्यक निदेश जारी कर सकती है ।

प्ररूप

(नियम 9 और 10 देखिए)

मैं इसके द्वारा यह घोषणा करता हूं कि निम्नलिखित के आधार पर *मुझे हिन्दी में प्रवीणता प्राप्त है/मैंने हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान प्राप्त कर लिया है :-

तारीख हस्ताक्षर

---

* जो लागू न होता हो, उसे कृपया काट दीजिए ।

Cover iii

कार्यालय आदेश तारीख 13 फरवरी, 2017 के अनुसार विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों पर छूट देने की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम व प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पुस्तक की मुद्रित कीमत (रुपयों में)	7 वर्ष से पुराने संस्करण पर 35% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	8 से 15 वर्ष पुराने संस्करण पर 50% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)	15 वर्ष से अधिक पुराने संस्करण पर 75% छूट के पश्चात् कीमत (रुपयों में)
1.	भारत का विधिक इतिहास - श्री सुरेन्द्र मधुकर - 1989	30	–	–	8
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि - डा. एन. बी. परांजपे - 1990	40	–	–	10
3.	वाणिज्य विधि - डा. आर. एल. भट्ट - 1993	108	–	–	27
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धांत - श्री शर्मन लाल अग्रवाल - 1993	40	–	–	10
5.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय - डा. एस. सी. खरे - 1996	115	–	–	29
6.	श्रम विधि - श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा - 1996	452	–	–	113
7.	संविदा विधि - डा. रामगोपाल चतुर्वेदी - 1998	275	–	–	69
8.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान - डा. सी. के. पारिख -1999	293	–	–	74
9.	आधुनिक पारिवारिक विधि - श्री राम शरण माथुर - 2000	429	–	–	108
10.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) - विधि साहित्य प्रकाशन - 2000	225	–	–	57
11.	हिन्दू विधि - डा. रवीन्द्र नाथ -2001	425	–	–	106
12.	भारतीय भागीदारी अधिनियम - श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ - 2001	165	–	–	41
13.	प्रशासनिक विधि - डा. कैलाश चन्द्र जोशी - 2001	200	–	–	50
14.	भारतीय दंड संहिता - डा. रवीन्द्र नाथ - 2002	741	–	–	185
15.	विधिक उपचार - डा. एस. के. कपूर - 2002	311	–	–	78
16.	विधि शास्त्र - डा. शिवदत्त शर्मा - 2005	580	–	290	–
17.	मानव अधिकार - डा. शिवदत्त शर्मा - 2006	120	–	60	–

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Cover iv

पी एल डी (सी. डी)-4-2019
भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के चयनित क्रमशः सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : 1. प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110054.
2. सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in